



**भवभूति के रूपकों में कथानक संरचना**  
**(BHAVABHŪTT'S ART OF PLOT CONSTRUCTION)**

**DISSERTATION**  
**SUBMITTED FOR THE DEGREE OF**  
**Master of Philosophy**  
**IN**  
**SANSKRIT**

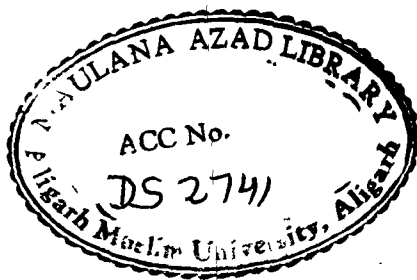
**BY**  
**ANITA AGARWAL**

**Under the Supervision of**  
**Dr. SATYA PRAKASH SINGH**  
**Professor**

**DEPARTMENT OF SANSKRIT**  
**ALIGARH MUSLIM UNIVERSITY**  
**ALIGARH (INDIA).**  
**1994**



DS2741



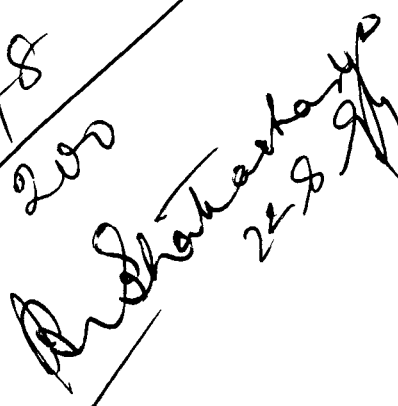
D. No. 468 / Sanskrit  
Date 1/6/94

Prof. Satya Prakash Singh  
Department of Sanskrit  
Aligarh Muslim University  
Aligarh.

This is to certify that the dissertation entitled  
"Bhavabhuti's Art of Plot Construction" submitted for the  
award of Master of Philosophy Degree in Sanskrit  
by Miss. Anita Agarwal, is an original work and the result  
of her own efforts, and the candidate has fulfilled all  
the conditions laid down in the ordinances on this behalf.

Forwarded  
Signature  
CHAIRMAN  
Department of Sanskrit  
Aligarh Muslim University  
ALIGARH

  
1-6-94

178  
200  
  
22/8/94

## प्राक्कथन

मनोरंजन के प्रति आकर्षण सहज मानवीय वृत्ति है। इतिहास साक्षी है कि भिन्न-भिन्न कालों में मनुष्य ने विविध साधनों से मनोरंजन किया है। मृगया से लेकर आधुनिक चलचित्र तक इसी लक्ष्य की पूर्ति करते हैं। चलचित्र प्राचीन रूपकों का ही विकसित रूप है। रूपक की सफलता उसकी अभिनेयता पर निर्भर है। उत्कृष्ट नाटकीयता के लिए सूक्ष्मदर्शी कुशल रचनाकार की आवश्यकता होती है। रूपक में सभी वस्तुओं को नहीं ग्रहण किया जा सकता है। अतः मञ्चन को दृष्टिगत रखते हुये कवि के लिए गम्भीर रूप से विवेकशील होना चाहिए। समुचित कथानक को कवि अपना प्रतिभा के माध्यम से कलात्मक स्वरूप प्रदान करता है। भवभूति द्वारा महावीरचरित, मालतीमाधव तथा उत्तररामचरित की रचना के लिए अपनायी गयी कथानक चयन पद्धति, उसमें की जाने वाली मौलिक उद्भावनायें, घटनाओं की प्रस्तुति, सामञ्जस्य एवं नाटकीयता आदि का प्रस्तुत प्रबन्ध में अध्ययन किया गया है।

प्रथम अध्याय में कथावस्तु एवं उपलब्ध रूपकों में उसकी संरचना के लिए अपनाये जाने वाले विभिन्न परम्परागत एवं आधुनिक प्रकारों की चर्चा की गयी है।

द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में क्रमशः महावीरचरित, मालतीमाधव एवं उत्तररामचरित नामक भवभूति के रूपकों में भवभूति द्वारा अपनायी गयी तकनीक का विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय में समग्रता के साथ भवभूति की नाट्यकला का विवरण देते हुये उसका मूल्यांकन का प्रयास किया गया है।

इस अवसर पर सबसे पहले मैं मान्य गुरुजी प्रो० सत्य प्रकाश सिंह के प्रति शतशः कृतज्ञ हूँ, जिनके योग्य निर्देशन से उक्त शोध पूर्ण हुआ है।

अतः उनके सहयोग को आभार जैसे शब्द में सीमित नहीं किया जा सकता है ।

आदरणीय प्रो० रामुल राजेश्वर शर्मा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मेरा परम कर्त्तव्य है। जिनके द्वारा सिखायी गयी शोध पद्धति से उक्त शोध प्रबन्ध में काफी सहायता हुयी है ।

मैं श्री कृष्णगोपाल की आभारी हूँ जिन्होंने अत्यधिक व्यस्त होते हुये भी, मेरे कार्य मे सहयोग प्रदान किया ।

संस्कृत विभाग की सेमिनार लाइब्रेरी की इंचार्ज नुज़हत किदवई के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे समय पर पुस्तकें उपलब्ध कराईं ।

मौलाना आजाद लाइब्रेरी के हिन्दी-संस्कृत विभाग में कार्यरत विजय गोविल एवं राखिम भाई की आभारी हूँ, जिन्होंने पुस्तकें उपलब्ध कराने में मेरी सहायता की ।

आदरणीय बाबूजी श्री गिराज किशोर अग्रवाल एवं माताजी श्रीमती विमलेश अग्रवाल के प्रति आभार व्यक्त न करना मेरी कृतघ्नता होगी जिनकी प्रेरणा, स्नेह एवं आर्थिक सहायता के आधार पर मेरा यह कार्य सम्पन्न हो सका है ।

दिनांक

28 मई, 1994

अनीता अग्रवाल  
विद्वज्जन कृपाकांक्षिणी

विषयानुक्रमिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय - 1.

रूपक और कथावस्तु

1 - 38

रूपक

कथावस्तु

कथावस्तु के स्रोत

मूलकथानक में परिवर्तन

कथानक संरचना

अधीप्रकृति

कार्यावस्थार्ये

सन्धियाँ

सन्ध्यांग

अधीपक्षेपक

कथानक संरचना के लिए -

आवश्यक निर्देश

शास्त्रीय सिद्धान्तों का रूपकों

में पालन

आधुनिक रूपकों की कथावस्तु-

संरचना

अध्याय - 2.

महावीरचरित में कथानक संरचना

39 - 54

परशुराम का उपाख्यान

कैकयी की दासी मन्थरा तथा

शूर्पणखा की एकरूपता

बाली का उपाख्यान

नाट्यशास्त्र के आधार पर कथानक -  
संरचना का मूल्यांकन

अध्याय - 3.	मालतीमाधव में कथानक संरचना	55 - 69
	नाट्यशास्त्र के आधार पर - कथानक संरचना का मूल्यांकन	
अध्याय - 4.	उत्तररामचरित में कथानक संरचना	70 - 96
	सीता-परित्याग सम्बन्धी- विषयवस्तु शम्भूक का उपाख्यान कुश-लव की पहचान राम-सीता पुनर्मिलन नाट्यशास्त्र के आधार पर - कथानक संरचना का मूल्यांकन	
अध्याय - 5.	कथानक संरचना में भवभूति की कला	97 - 108
	सन्दर्भ - ग्रन्थसूची	

रूपक और कथावस्तु  
=====



## अध्याय - 1 =====

### रूपक और कथावस्तु =====

#### रूपक ---

"रूप" धातु से "ण्वुल्" प्रत्यय होकर "रूपक" शब्द की व्युत्पत्ति होती है। काव्य की जिस विधा को आँखों से देखा जाता है उसे रूपक कहते हैं। चक्षु/इन्द्रिय का विषय रूप है और नाटक चक्षुओं से देखा जाता है। इसी में रूपक का रूपकत्व निहित है। कहा भी गया है "रूपं दृश्यतयोच्यते"<sup>1</sup> अर्थात् जिसे दृष्टि से देखा जाता है वह रूप है। अथवा "रूप का समारोप होने का कारण दृश्यकाव्य को रूपक कहा जाता है।"<sup>2</sup> साहित्यदर्पण में कहा गया है कि नट में या अभिनेता में राम आदि के स्वरूप का आरोप किया जाता है, अतः यह दृश्यकाव्य रूपक कहलाता है।<sup>3</sup> रूपक महाकाव्य, कथा, आख्यायिका आदि से भिन्न होता है क्योंकि रूपक में अभिनय भी होता है जो उपर्युक्त विधाओं में नहीं होता है। इसीलिए नाट्यदर्पणकार ने इसे "अभिनेयकाव्य"<sup>4</sup> भी कहा है।

#### कथावस्तु -----

जिस वर्ण्यविषय को लेकर कवि रचना करना चाहता है उसे कथावस्तु कहते हैं। रचना करने से पूर्व की समस्त सामग्री कथावस्तु

-----

1. धनञ्जय, दशरूपक, द्वितीय संस्करण 1.7

2. "रूपकं तत्समारोपात्" वहीं ।

3. "तद् दृश्यं काव्यं नटे रामादिस्वरूपारोपादूपकमित्युच्यते" ।

विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 6.1, वृत्ति ।

4. "अभिनेयस्य काव्यस्य", रामचन्द्र गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण 1.2 ।

कहलाती है । भरतमुनि के अनुसार "कथावस्तु काव्य का शरीर है ।"।

सम्पूर्ण काव्यरचनाएँ किसी न किसी कथानक पर आधारित होती हैं । कवि अपनी अनुभूतियों को मूर्त रूप देने के लिए किसी कथानक का सहारा लेता है । यद्यपि काव्य का चरमलक्ष्य रस है तथापि उसका शरीर कथावस्तु ही है । यदि रस की स्थिति आत्मा के समान है तो कथावस्तु की स्थिति शरीर के समान है । कथानक के बिना रस की अनुभूति असम्भव है ।

वस्तु, नेता और रस - नाटक के इन तीन मूलभूत तत्त्वों में रस का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है । यही कारण है कि रस को न केवल स्वयं की अपितु काव्य की आत्मा स्वीकार किया गया है । रस-निरूपण का आधार चरित्र-चित्रण होता है और चरित्र-चित्रण पात्रों के माध्यम से किया जाता है । अतः पात्रों का भी महत्त्व कम नहीं है । परन्तु कथावस्तु पर रसनिरूपण और चरित्रचित्रण की प्रभावोत्पादकता निर्भर होती है । कथानक एक ऐसा तत्त्व है जिसके उत्कर्ष अथवा अपकर्ष से पात्रों के चरित्रचित्रण एवं रसोन्मेष का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है अतः यह जानना आवश्यक है कि कथानक का चयन किस स्रोत से किया जाना अधिक सुविधाजनक रहेगा ? तथा उसमें किस सीमा तक परिवर्तन किया जा सकता है ? परिवर्तन करने का क्या आधार है ? कथानक की संरचना किस प्रकार की जाय ? इत्यादि । कहा भी गया है कि "नाटक की पूर्ण सफलता के लिए यह आवश्यक नहीं कि कथानक सदा ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक अथवा सामाजिक हो । वस्तुतः

-----

1. "इतिवृत्तं तु काव्यस्य शरीरं परिकीर्तितम्" भरत, नाट्यशास्त्र 2।.।

इनमें से कोई भी ढाँचा बनाया जा सकता है । वास्तविक प्राणप्रतिष्ठा तो रचनातन्त्र पर अधिकार, भाव विचार की गम्भीरता व उद्देश्य की स्पष्टता पर निर्भर होती है । प्रसिद्ध अथवा रोचक कथानक की उपस्थिति मात्र ही नाटक की सफलता का आधार नहीं है अतः रसोत्पत्ति की दृष्टि से वस्तु का पुष्ट संगठन, उसके विविध अंगों का कौशलपूर्ण अवस्थान व सुस्निग्ध घटनाक्रम की स्थापना आदि बातें अधिक महत्वपूर्ण हैं ।<sup>1</sup> अतः कहा जा सकता है कि एक साधारण कथानक भी अच्छी प्रकार से संरचित होने पर प्रभावशाली हो सकता है ।

### कथावस्तु का स्रोत

संस्कृत रूपकों की कथावस्तु के तीन विभाग देखे जाते हैं । कुछ रूपकों में कथानक ऐतिहासिक, कुछ में कविकल्पना प्रसूत तथा कुछ में मिश्रित होता है। भरत ने इस बात का प्रत्यक्ष उत्तर नहीं दिया है कि इतिवृत्त कहाँ मिल सकता है, लेकिन रूपक के दस प्रकारों की परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है । नाट्यशास्त्र के अनुसार "नाटक में एक प्रसिद्ध इतिवृत्त होना चाहिए और इसमें प्रसिद्ध राजाओं के कार्यों का अनुसरण किया जाना चाहिए"<sup>2</sup> इसके अतिरिक्त पौराणिक कथानक भी लिया जा सकता है । औत्पत्तिक । काल्पनिक । कथानक प्रकरण में लिया जा सकता है । धनञ्जय के अनुसार एक तीसरे प्रकार का कथानक भी होता है वह है "मिश्रित" । उनके मत में "प्रख्यात"

1. नगेन्द्र, भारतीय नाट्य साहित्य, पृ 36

2. नाट्यशास्त्र 20.10

इतिहास, पुराण आदि से गृहीत होता है, "उत्पाद्य" कवि की स्वयं की कल्पना होती है तथा "मिश्र" में दोनों का मिश्रण रहता है ।<sup>1</sup>

नाट्यदर्पणकार के मत में "नाटक में पूर्वकाल के प्रसिद्ध राजाओं का चरित प्रदर्शित किया जाना चाहिए"<sup>2</sup> अतः कहा जा सकता है कि नाटक का कथानक पौराणिक होना चाहिए तथा नायक प्राचीनकाल का ही होना चाहिए, समकालीन नहीं। रामचन्द्र गुणचन्द्र के मत में "यदि नायक समकालीन होगा तो प्रसिद्धि के बाधित होने से रस की हानि होगी तथा अतीत के महान् व्यक्तियों के प्रति असम्मान व्यक्त होगा।"<sup>3</sup> नाट्यदर्पणकार के उपर्युक्त मत के विरुद्ध सागरनन्दी का यह मत है कि प्रसिद्ध समकालीन कथानक का भी नाटक में चित्रण किया जा सकता है। उनका कहना है कि "यदि पाँच अर्धप्रकृतियों का निर्वहण करते हुये रूपकार किसी महान् समकालीन राजा का चित्रण कुशलतापूर्वक करता है तो उसे नाटक का कथानक बनाया जा सकता है।"<sup>4</sup> शारदातनय शुद्ध पौराणिक कथानक को प्रमुखता तो देते हैं परन्तु वे समकालीन कथानक के पूर्ण रूप से विरुद्ध नहीं हैं। उनका कहना है कि नाटककार आवश्यकतानुसार इसका प्रयोग कर सकता है।<sup>5</sup>

1. दशरूपक 1.15, 16 ।

2. "छयाताघराजचरितं" नाट्यदर्पण 1.5

3. वर्तमाने च नेतारि तत्कालप्रसिद्धिबाधया रसहानिः स्यात् ।  
पूर्वमहापुरुषचरितेषु च अश्रद्धानं स्यात् ।, वही, वृत्ति

4. "वर्तमानापि नृपतेर्महादभुतस्य कविबुद्धि प्रकर्षादासादित बीजविन्दादिकं  
यदि भवति भवत्येव नाटकविषयम् ।"

सागरनन्दी नाटकलक्षण रत्नकोश। पृ 3

5. "चरितं नायकादीनामिति वृत्तमिति स्मृतम्। प्रयोजनवशात्तन्तु वर्त-  
मानमपि क्वचित् ।।" शारदातनय, भावप्रकाशन, पृ 200

धनञ्जय तथा विश्वनाथ ने इस विषय पर कुछ नहीं कहा है । सागरनन्दी ही पहले व्यक्ति है जिन्होंने यह सुझाव दिया कि वर्तमानकाल की कथा को भी नाटक का कथानक बनाया जा सकता है। सागरनन्दी के इस मत को लक्ष्यगुण्ठों में लागू करने वाले नाटककारों में कालिदास पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सर्वप्रथम मालविकाग्निमित्रम् में अपेक्षाकृत आधुनिक कथानक ग्रहण किया और यह सफल भी रहा परन्तु बाद के नाटककारों ने इस प्रकार के कथानक को लेने का साहस नहीं किया ।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कथानक का स्रोत पौराणिक हो अथवा आधुनिक अथवा दोनों का मिश्रण हो परन्तु प्रत्येक प्रकार से विषय-वस्तु प्रसिद्ध होनी चाहिए ताकि बिना किसी बाह्य सहायता के रूपक की कथा का अनुमान लगा सकें ।

दूसरे प्रकार का कथानक वह होता है जिसमें समस्त घटना कवि की कल्पना द्वारा प्रसूत होती है। इस घटना का इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि इसमें कोई पात्र को इतिहास से सम्बद्ध बिल्कुल नहीं होना चाहिए। अपवाद स्वरूप कोई पात्र इतिहास से सम्बद्ध भी हो सकता है। परन्तु अधिकांश कथा कविकल्पित ही होती है। शूद्रक का मृच्छकटिक एक ऐसा रूपक है जिसकी समस्त कथा कवि कल्पित है ।

तीसरे प्रकार का कथानक मिश्रित कहलाता है। इसमें पौराणिक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार की कथाओं का मिश्रण होता है तथा

देवताओं और मनुष्यों दोनों प्रकार के पात्रों का समायोजन होता है । मिश्रित कहने का अभिप्रायः यह है कि दोनों प्रकार की कथा लगभग समान भागों में बँटी होती है। यदि किसी ऐतिहासिक रूपक में एकाध पात्र या घटना ऐसी आ जाये जिसका इतिहास से कोई सम्बन्ध न हो जैसे भवभूति के महावीरचरित में रावण के कुलपुरुहित सर्वमाय नामक राक्षस कवि की मौलिक कल्पना है, रामायण में इसका वर्णन कहीं नहीं है । अतः केवल एक पात्र के आधार पर महावीरचरित के कथानक को मिश्रित कथानक की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता । यही बात अन्य नाटकों के विषय में भी कही जा सकती है। यदि कवि किसी पात्र अथवा घटना का कल्पना से समायोजन नहीं करेगा तो उसकी रचना की इतिहास से अलग विशेषता ही क्या रह जायेगी। रूपक की दस विधाओं में से केवल ईहामृग नामक विधा में मिश्रित कथानक होता है। उदाहरण के रूप में कोई भी प्राचीन ईहामृग प्राप्त नहीं होता । "रुक्मिणी परिणय" नामक केवल एक ईहामृग प्राप्त होता है। यह भी बारहवीं शताब्दी की रचना है तथा ईहामृग के लक्षणों को सामने रखकर रची गयी है।<sup>1</sup>

---

1. Keith, The Sanskrit Drama P. 346

### मूलकथानक में परिवर्तन =====

इतिवृत्त के तीन प्रकारों अर्थात् प्रख्यात, उत्पाद्य तथा मिश्र में उत्पाद्य इतिवृत्त कवि कल्पित होता ही है । इसमें परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि सब कुछ काल्पनिक ही होता है । परन्तु ऐतिहासिक कथानक में कवि अपनी कल्पना का समायोजन अवश्य करता है । नाटककार अपने पात्रों को संसार से ही ग्रहण करता है परन्तु जीवन के दृश्यों का ज्यों का त्यों प्रदर्शन दर्शकों द्वारा पसंद नहीं किया जाता, अतः नाटककार को कुछ आवश्यक परिवर्तन करने पड़ते हैं । प्रश्न यह उपस्थित होता है कि नाटककार प्रसिद्ध कथानक में किस सीमा तक परिवर्तन कर सकता है ?

नाटक के माध्यम से समाज के सामने परोक्ष रूप से एक आदर्श प्रस्तुत किया जाता है और वह आदर्श तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जबकि नाटक में सत्य की विजय और असत्य की पराजय तथा महान् कार्यों का चित्रण किया जाय । इसी उद्देश्य के लिये कवि उच्च-कोटि के पात्रों का चयन करता है और इनके महान् कार्यों का वर्णन करता है । कवि कथानक के माध्यम से ही अपनी कृति की रचना करता है । उसे रसास्वादन के साथ-साथ मर्यादाओं का भी ध्यान रखना पड़ता है । वह ऐसी रचना नहीं कर सकता, जिसमें रसास्वादन तो हो परन्तु मर्यादाएँ समाप्त हो जायें । इसी कारण वह मूलकथानक में परिवर्तन कर लेता है । लेकिन नाटककार मूल कथानक में परिवर्तन सीमाओं में रहकर ही करता है । अतः नाटककार कथा के मूल ढाँचे में परिवर्तन नहीं कर सकता उदाहरणतः किसी कथानक में रावण द्वारा राम की पराजय का चित्रण नहीं किया जा सकता । यदि ऐसा कर दिया जायेगा तो इतिहास की भावना ही समाप्त हो जायेगी तथा

सामाजिकों को परस्पर विरोधी ऐतिहासिक जानकारीयों मिलेगी ।

वस्तुतः होता यह है कि इतिहास में यथार्थ जीवन चित्रित होता है और केवल यथार्थ के आधार पर कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं किया जा सकता । अतः कवि नकारात्मक बिन्दुओं को छोड़ देता है अथवा उन्हें परिवर्तित कर देता है ।

कोई भी मनुष्य कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो उसमें कुछ दुर्बलताएँ होती ही हैं । कहा भी गया है कि "स्खलनं मनुष्याणां धर्मः"। परन्तु कवि को मनुष्य की दुर्बलताओं को बचाना पड़ता है । वह इन दुर्बलताओं में इस प्रकार से भी परिवर्तन कर सकता है कि इनके पीछे संतोषजनक कारण बताया जा सके । अतः वह पात्रों की चारित्रिक दुर्बलताओं पर पर्दा डालता है । नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में कहा भी गया है कि "नायक की प्रकृति तथा नाटक के प्रमुख रस । वीर या श्रृंगार । के प्रतिकूल जो कोई बात इतिवृत्त में पायी जाती हो, कवि को चाहिए कि उसे इस तरह परिवर्तित कर दे कि नायक के चरित्र का वह दोष न रहे अथवा रस का वह प्रतिकूल तत्त्व हट जाय । इस तरह की जो कोई अनुचित बात हो उसे वह छोड़ ही दे या परिवर्तित करके नये रूप में रख दे ।" ।

उदाहरणस्वरूप महाभारत के शकुन्तलोपाख्यान में वर्णित राजा दुष्यन्त एक स्वाधीन व्यक्ति है । रूप के वशीभूत होकर वह शकुन्तला से प्रेम सम्बन्ध तो स्थापित कर लेता है लेकिन समाज के समक्ष

1. "यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा ।

विरुद्धं तत्परित्याज्य मन्मथा या प्रकल्पयेत् ॥ दशरूपक 3.24

साहित्यदर्पण, 6.50, नाट्यदर्पण, 1.18,



उसे स्वीकारने का साहस नहीं कर पाता । कालिदास ने दुष्यन्त को इस रूप में चित्रित नहीं किया है । उन्होंने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुर्वासा के शाप की कल्पना करके दुष्यन्त की इस चारित्रिक दुर्बलता को समाप्त कर दिया है । शाकुन्तल का दुष्यन्त शकुन्तला से प्रेम सम्बन्ध तो स्थापित करता है, लेकिन शकुन्तला को स्वीकार करने में उसे समाज का भय नहीं, प्रत्युत् शाप के वशीभूत होने से दुष्यन्त को इस प्रेम सम्बन्ध के विषय में कुछ भी स्मरण नहीं रहता है ।

इसी प्रकार रामायण में राम वाली को छिपकर मारते हैं । यह घटना राम के चरित्र को कलंकित करती है । किन्तु राम का चरित्र भवभूति को स्वीकार नहीं होता अतः उन्होंने रामायण के इस कथानक में परिवर्तन करके महावीर चरित में राम को इस चारित्रिक दोष से बचा लिया है तथा मगधराज ने उदात्तराघव में इस वृत्त को बिलकुल छोड़ दिया है ।

स्पष्टकर किसी भी पात्र के किन्हीं कृत्यों से यदि अंतर्दृष्ट होता है तो वह उनका अभिधान भी पात्रों के मुख से ही कराता है क्योंकि स्पष्ट में उसे कुछ कहने के लिए अनुमति नहीं होती । वह एक बाह्य व्यक्त होता है । उदाहरणतः भवभूति राम के कुछ कृत्यों से अंतर्दृष्ट प्रतीत होते हैं, उनका हृदयस्थ क्षोभ लव के शब्दों में निम्न प्रकार से व्यक्त हुआ है ।

“ वस्तुतः कौन राम के चरित तथा माहात्म्य को नहीं जानता तो भी कुछ कहने योग्य है, अथवा रहने दें । सुन्दरी भाया ताड़का का हनन होने पर भी अप्रतिहत कीर्ति वाले वे लोक में महान् ही हैं । खर के साथ युद्ध में पीछे की ओर मुख न फेरकर तीन पदाक्षेप करने वाले, इन्द्र के पुत्र वाली को धोखे से मारने वाले राम के चरित्र से

लोग परिचित ही हैं ।\* ।

कवि की रचना में उसकी अपनी विचारधारा भी व्यक्त होती है । जिन्हें वह किसी भी रूप में व्यक्त करता है । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी उसे कथानक में परिवर्तन करना पड़ता है ।

कथानक सामाजिकों पर एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालता है । नाटककार लोगों की मनोदशा को समझकर उसके मनोदशा के अनुस्यू कथानक में परिवर्तन करता है ताकि लोगों की उसके पात्रों के साथ पूर्ण सहानुभूति हो सके ।

### कथानक संरचना

सर्वप्रथम कवि के मस्तिष्क में एक सम्पूर्ण कथा विद्यमान रहती है । इसे वह एक विशिष्ट क्रम में सुसज्जित करके प्रस्तुत करता है । इस क्रम के लिए कवि को व्यूह रचना करनी होती है जिसमें वह कथानक को विभिन्न स्थलों पर विश्राम देता हुआ वह विकास की ओर ले जाता है ।

सर्वप्रथम कथानक को दो भागों में विभाजित किया जाता है, आधिकारिक और प्रासंगिक । भरत के अनुसार जो घटनायें इच्छित परिणाम को प्राप्त कराती हैं वे आधिकारिक वृत्त तथा शेष प्रासंगिक अथवा गौण कहलाती हैं ।<sup>2</sup> मुख्य कथावस्तु का कर्ता स्वयं नायक होता है । जैसे :- शाकुन्तलम् में दुष्यन्त । अन्य कथानक जैसे - विदूषक, दुर्वासा तथा मछुआरे इत्यादि के कथानक प्रासंगिक होते हैं । नाट्य-दर्पण के अनुसार कोई भी विषय स्वयं मुख्य या प्रासंगिक नहीं होता ,

1. भवभूति, उत्तररामचरित 5. 34

2. नाट्यशास्त्र 21. 3

बल्कि जो विषय इच्छित परिणाम के साथ समाप्त होता है वह मुख्य कहलाता है ।<sup>1</sup>

प्रत्येक कथानक में प्रासंगिक कथावस्तु अनिवार्य होती है , परन्तु इसकी प्रस्तुति इस बात पर निर्भर करती है कि वह मुख्य कथानक के उद्धार में सहायक है या नहीं । भरत के अनुसार प्रासंगिक कथावस्तु केवल उसी के निमित्त प्रस्तुत नहीं की जानी चाहिए तथा उसकी अपनी समाप्ति भी नहीं होनी चाहिए । बल्कि उन्हें मुख्य कथानक के उत्कर्ष में सहायक होना चाहिए ।<sup>2</sup> रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार नाटक में वही प्रासंगिक कथावस्तु होनी चाहिए जो मुख्य कथावस्तु की अप्रत्यक्ष रूप से उन्नति करे ।<sup>3</sup> प्रासंगिक कथावस्तु को मुख्य कथावस्तु के बाद प्रारम्भ होना चाहिए और उसके समाप्त होने से पहले ही समाप्त होना चाहिए ।

### अधुप्रकृति =====

कथानक को दो भागों में विभाजित करने के बाद समस्या यह उत्पन्न होती है कि नाटककार उन दोनों को किस प्रकार समवेत रूप से प्रस्तुत करे । इसके लिए नाटककार कथानक को अंकों में बाँटता है ,

- 
1. "इह तावन् न निसर्गतः किञ्चिन् मुख्यमंगं वा किन्तु बहुष्वपि फलेषु कविर्यस्यात्थन्तमुत्कर्षमभिप्रैति तत् फलमिष्टम् । अनेन च यत् फल-वद् वृत्तं तदिह मुख्यम् ।" - नाट्यदर्पण 1. पृ 29
  2. नाट्यशास्त्र 21. 5
  3. "नाट्ये हि तदेव अवान्तरं वृत्तमायोज्यं यत् पारम्पर्येण प्रधान फलसाधकम् ।" - नाट्यदर्पण 1. पृ 36

जिन्हें प्रारम्भ तथा अन्त की दृष्टि से स्वतन्त्र होना चाहिए । लेकिन इसके साथ-साथ उन्हें पढ़ते एवं मञ्चित करते समय एक एकता भी बनाये रखनी होती है । इस एकस्यता को प्राप्त करने के लिए नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में पाँच तत्त्व बताये गये हैं । ये तत्त्व अष्टप्रकृति कहलाते हैं ।<sup>1</sup> सागरनन्दी के अनुसार इन पाँच तत्त्वों के बिना कोई भी कथानक सम्भव नहीं है । वे तत्त्व हैं - बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य । ये पाँचों तत्त्व प्रत्येक रचना में हों यह आवश्यक नहीं क्योंकि जिस कथानक में प्रासंगिक कथा नहीं होगी उसमें पताका एवं प्रकरी भी नहीं होंगे । जबकि बीज, बिन्दु तथा कार्य प्रत्येक कथानक में होते हैं ।

जैसा कि पहले कहा गया है कवि के मस्तिष्क में कथानक की सम्पूर्ण घटनायें पूर्व निर्धारित होती है । वह जानबूझकर कुछ ऐसे संकेतों को छोड़ देता है जो बाद में विस्तृत होकर कथानक के विकास में सहायक होते हैं । जिस प्रकार वृक्ष के बीज में सम्पूर्ण वृक्ष का स्वरूप निहित होता है इसी प्रकार इस बीज में भी सम्पूर्ण रूप की कथा छिपी रहती है । बीज को पल्लवित करने के लिए उसमें कुछ अवान्तर विषय डाले जाते हैं जो कथानक को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं । ये विषय एक दूसरे से असम्बद्ध न हो जायें, अतः किसी ऐसे तत्त्व की आवश्यकता होती है जो इनमें सम्बन्ध स्थापित कर सकें । इसी तत्त्व को नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में बिन्दु नाम से अभिहित किया जाता है ।<sup>2</sup> कथानक के विकास में सहायक तीसरी अष्टप्रकृति पताका कहलाती है ।

1. नाट्यशास्त्र 21.22, नाटकलक्षण रत्नकोश-पृ० 6-7, दशरूपक 1.18, साहित्यदर्पण 6.64-65, भावप्रकाशन पृ० 204 ।

2. नाट्यशास्त्र 21.24, नाटकलक्षण रत्नकोश - पृ० 24, भाव-प्रकाशन 7, पृ० 204 ।

ये मुख्य कथानक से प्रारम्भ होने के बाद कई अंकों तक उसका अनुसरण करती है। इस विषय में भरतमुनि का मत है कि "जब मुख्य या आधिकारिक कथा के मध्य कोई घटना उसका उपकार या पुष्टि करने के लिए रखी जाये और उसकी भी मुख्य कथा जैसी व्यापक उपयोगिता रखी जाये तो उसे पताका कहा जाता है।" अतः यह एक उपकथानक होता है जो अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखता है, मुख्य कथा का उपकारक होता है, तथा मुख्य कथा द्वारा भी इसका उपकार किया जाता है।

रूपक में कवि को अपनी ओर से कहने के लिए कुछ भी अवकाश नहीं होता। उसे जो भी कहना है वह या तो किसी अन्य पात्र के मुख से कहलवाता है या कोई ऐसी घटना का चित्रण करता है जो नाटक की चरित्रिक विशेषताओं को प्रदर्शित कर सके। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए रूपक में प्रकरी नामक अर्थप्रकृति का निवेश किया जाता है। प्रकरी बहुत संक्षिप्त होती है। जैसे रामायण में शबरी की कथा, जहाँ प्रारम्भ होती है वहीं समाप्त हो जाती है, परन्तु उसके चित्रण द्वारा कवि राम की हृदयगत कल्याण एवं दया को प्रदर्शित करने में पूर्ण सफल हुआ है।

प्रत्येक रचना में कवि नायक अथवा नायिका से कोई महान् कार्य किये जाने की अपेक्षा रखता है। उसके उन कार्यों के आधार पर ही सहृदय उसे सम्मान और सहानुभूति प्रदान करते हैं। इन सब कार्यों को सम्पन्न करने के लिए उद्यम करने पड़ते हैं। नाट्यशास्त्रीय भाषा में इन सबको 'कार्य' कहते हैं।

ये अधिप्रकृतियाँ स्वक की संरचना में एक स्वर-रेखा के समान हैं। वे स्वक की रचना के लिए एक प्रकार की सामग्री है। इन्हें संस्कृत करके स्वक में कवि अपने कौशल द्वारा निवेशित करता है।

### कायाविस्थायें =====

स्वक में स्वककार एक ऐसा लक्ष्य निर्धारित करता है जिसकी नायक के द्वारा प्राप्त करने की अपेक्षा की जाती है। यदि नायक इस लक्ष्य को अनायास ही प्राप्त कर लेगा तो स्वक ही समाप्त हो जायेगा। अतः उस का अस्तित्व बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि नायक एक निश्चित क्रम से इस उद्देश्य की प्राप्ति करे। नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नायक द्वारा किये जाने वाले कार्य "कार्य-अवस्थायें" कहलाते हैं। ये कायाविस्थायें - आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा नियताप्ति तथा फलागम।

बीज के प्रारम्भ से कथानक शुरू होता है। बीज द्वारा स्वक के उद्देश्य का संकेत करने के बाद, उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए स्वक में चमत्कार उत्पन्न किये जाते हैं। इसी उद्देश्य से आकर्षित होकर नायक इच्छित फल को प्राप्त करने के लिए कार्य करता है। ये स्वक की "आरम्भ" तथा "यत्न" नामक कायाविस्थायें कहलाती हैं। इसके बाद नायक के कार्यों में विभिन्न बाधायें आती हैं और शनैः-शनैः उसे सफलता का मार्ग प्रतीत होता है। यह अवस्था "प्राप्त्याशा" के नाम से जानी जाती है। यह कथानक का चरमबिन्दु होता है। इसके बाद नायक अपना काम पुनः प्रारम्भ करता है तथा उसे लगता है कि उसका इच्छित फल प्राप्त होने ही जा रहा है। परन्तु उसके साथ कुछ शर्तें जुड़ी होती हैं तथा वहीं से दशकों की जिज्ञासायें कम होने लगती हैं यह अवस्था "नियताप्ति" कहलाती है। अन्त में अपने प्रयासों द्वारा

अथवा किसी दैवी कृपा से वह समस्त बाधाओं को दूर कर देता है । उसे इच्छित फल की प्राप्ति हो जाती है । यह अवस्था "फलागम" कहलाती है । इसी के साथ स्वयं समाप्त हो जाता है ।

आरम्भ नामक अवस्था में नायक कोई भी व्यवहारिक काम नहीं करता बल्कि उसकी केवल त्रिव इच्छा ही बताई जाती है । प्रयत्न अवस्था में नायक के पास अनेक योजनाएँ होती हैं लेकिन वह किसी को कार्य स्व देने में सफल नहीं होता है । यही वह उचित स्थान होता है जहाँ पर किसी प्रासंगिक कथावस्तु का निवेश किया जा सकता है । लेकिन ऐसा तभी किया जा सकता है जब कथानक उसकी अनुमति दे । इसके द्वारा नायक या तो किसी कार्य से विरत हो जायेगा अथवा उसके प्रति उत्साहित हो जायेगा । उदाहरणतः मृच्छकटिक में आर्यक का प्रसंग चारुदत्त और वसन्तसेना के मिलन को रोकता है परन्तु अन्त में नायक की रक्षा भी करता है ।

ये अर्थकृतियाँ तथा कायाविस्थायें स्वयं रचना के लिए एक प्रकार के विभ्राम स्थल हैं । प्रत्येक विभ्रामस्थल पर कथानक को एक नयामोड़ दिया जाता है । इन मोड़ों से भिन्न-भिन्न दिशाओं में होता हुआ कथानक चरमलक्ष्य की ओर अग्रसर होता रहता है तथा फलयोग होने पर समाप्त हो जाता है ।

वस्तुतः बीजादि पाँच अर्थकृतियाँ वस्तु 'कथानक' के उपादान हैं । पाँचों कायाविस्थायें नायक की मनोदशायें हैं एवं उनके क्रियाकलाप हैं । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि अर्थकृतियाँ स्वयं का बाह्य स्वरूप हैं, जबकि कायाविस्थायें आन्तरिक स्वरूप हैं ।

### सन्धियाँ =====

पाँच अर्थकृतियों और पाँच कायाविस्थाओं का क्रमिक संबंध सन्धि कहलाता है । भरतमुनि ने सन्धियों की कोई परिभाषा तो नहीं दी है परन्तु उन्होंने कथानक को पाँच सन्धियों में बाँटा अवश्य है । "इतिवृत्त" काव्य का शरीर है तथा पाँच सन्धियाँ उसके विभाग हैं।<sup>1</sup> अतः कहा जा सकता है कि रूपकों के स्वरूप को एक शरीर की कल्पना में रखते हुये उसके विधायक अंगों के रूप में सन्धियाँ को रखा गया है ।

सन्धि शब्द का "शाब्दिक" अर्थ जोड़ना है । यह कथानक की विभिन्न घटनाओं के मध्य एक कड़ी का कार्य करती है। विस्तर करते समय कथानक विकीर्ण हो जाता है । नायक के मानसिक एवं शारीरिक व्यापार परस्पर असम्बद्ध लगने लगते हैं । सन्धियाँ इन व्यापारों का सम्बन्ध स्थापित करती हैं । सन्धियों के माध्यम से ही रूपक में एकरूपता आती है।<sup>2</sup>

रूपक में पाँच सन्धियाँ होती हैं :- मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श तथा निर्वहण ।

1. "इतिवृत्तं तु काव्यस्य शरीरं परिकीर्तितम् ।

पंचभिः संधिभिस्तस्य विभागाः परिकीर्तिताः ॥"-नाट्यशास्त्र 21.1

2. "The word 'Sandhi' literally mean joining and in its technical sense also it serves both the purpose-breaking the plot into sections and maintaining a link. The basis of this division and linking is clearly the thoughts and the different stages of the action of the hero."

Biswanath Bhattacharya - Sanskrit Drama and  
Dramaturgy. P.70



ये पाँचों सन्धियाँ केवल रूपक की "नाटक" तथा "प्रकरण" नामक विधा में ही एक साथ मिल सकती है, अन्य विधाओं में इनकी एक साथ स्थिति सम्भव नहीं है। पताका तथा प्रकरी का अस्तित्व केवल प्रासंगिक कथावस्तु के होने पर ही हो सकता है। यदि प्रासंगिक कथावस्तु नहीं होगी तो पताका तथा प्रकरी भी नहीं होंगी। इसके अतिरिक्त अंक, प्रहसन, भाण नामक रूपक की विधाओं में केवल एक ही अंक होता है अतः इसमें केवल मुख तथा निर्वहण सन्धि होती है। अन्य सन्धियों के प्रदर्शन के लिए इसमें अवकाश नहीं होता। सागरनन्दी का मत भी इसी प्रकार है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सन्धियों का प्रयोग कथानक की प्रकृति पर निर्भर करता है।

~~सन्धियाँ~~  
-----

ये पाँचों सन्धियाँ कुल चौंसठ प्रकार की होती हैं। नाट्य-शास्त्रियों के अनुसार मुखसन्धि के बारह, प्रतिमुख के तेरह, गर्भ के बारह, विमर्श के तेरह तथा निर्वहण के चौदह भाग होते हैं। भरत तथा उनके परवर्ती नाट्यशास्त्री इन सन्धियों को बहुत महत्त्व देते हैं। भरत के अनुसार "जिस प्रकार किसी अंग से हीन व्यक्ति लड़ाई नहीं लड़ सकता उसी प्रकार किसी सन्धयंग से हीन कथानक प्रभाव डालने में असमर्थ रहता है।" 2 भरत के मत में यदि कोई नाटक कथानक की दृष्टि से दृढ़ है परन्तु उसमें सन्धयंगों का उचित प्रयोग है, तो वह अच्छा प्रभाव डालता है। इसके विपरीत बहुत अच्छे कथानक वाला रूपक किसी सन्धयंग के अभाव में आकर्षक नहीं होता। आधुनिक दृष्टिकोण से इतने सन्धयंग अनावश्यक

- 
1. प्रासंगिकस्याधिकारिकस्यार्थे वर्तमानस्य यदि विस्तारात्  
सन्धयो विधातु पंचापि शक्यन्ते तदायं नियमो नावश्यकर्तव्य तथाभ्यु-  
गन्तव्यः । - नाटक लक्षण रत्नकोश, पृ० 20

है तथा ये पाँच सन्धियाँ ही पर्याप्त हैं। इसके अतिरिक्त किसी रूपक-कार ने इन सभी का चित्रण भी नहीं किया है क्योंकि रूपक में रस निरूपण ही प्रमुख माना जाता है जिसके लिए कोई निश्चित योजना निर्धारित नहीं की जा सकती। अतः इन सन्धियों के विषय में नाटककार को पर्याप्त स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। अन्यथा वह नियमों का पालन करता ही रह जायेगा तथा रसनिरूपण में असफल रहेगा।

### अर्थोपक्षेपक

काव्य दो प्रकार का होता है - दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य। श्रव्यकाव्य के कथानक के वर्णन में कवि के पास दृश्य काव्य की अपेक्षा अधिक स्वतन्त्रता होती है। जहाँ कहीं भी कोई कथा या घटना स्पष्ट होने लगती है वहाँ वह स्वयं कथानक में प्रवेश करके उस बात को स्पष्ट कर सकता है। अथवा वह स्वयं ही कथा को सुना रहा होता है। अतः वह जितना चाहे अपनी इच्छा अनुसार विस्तार भी कर सकता है। परन्तु रूपक में ऐसा नहीं होता। क्योंकि रूपककार कथानक में एक बाह्य व्यक्ति होने के कारण स्वयं प्रवेश नहीं कर सकता परिणामस्वरूप उसे सारी घटनाएँ पात्रों के द्वारा ही स्पष्ट करनी होती है। यही कारण है कि रूपक में प्रधान घटनाओं का ही अभिनय किया जाता है।

कुछ घटनाएँ इस प्रकार की होती हैं जो गौण होती हैं, परन्तु कथानक में यदि उनकी जानकारी न दी जाये तो रचना में संदिग्धता बनी रहती है। अतः इस प्रकार की घटनाओं की सूचना पात्रों के वार्तालाप के माध्यम से नेपथ्य से अथवा किसी अन्य प्रकार से दी जाती है। उदाहरणस्वरूप किसी लम्बी यात्रा को दिखाते समय "प्रतिपद" (step by step) की जानकारी दी जाये तो अव्यावहारिक तथा उबाऊ होगी। अतः इन घटनाओं की सूचना उपर्युक्त माध्यमों से ही दी जाती है

इससे एक तो समय की बचत होती है, दूसरे वर्णन में उबाऊमन को मिटाया जा सकता है । इसके अतिरिक्त अन्य दृश्यों का भी वर्णन नाट्यशास्त्र के नियमों के विरुद्ध माना जाता है जैसे राज्य तथा देश का विप्लव, संभोग, मृत्यु तथा अंगच्छेद के दृश्यों का वर्णन करना वर्जित है ।<sup>1</sup>

राज्य तथा देशादि के विप्लव का वर्णन न करने का कारण यह है कि इस प्रकार के वर्णन उबाऊ तो होते ही हैं साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों में इनका चित्रण व्यवहारिक भी नहीं होता था । उस समय आजकल के समान अत्याधुनिक कैमरे भी नहीं थे । अतः आधुनिक चलचित्र में उक्त दृश्यों के सफल प्रयोग से नाट्यशास्त्रियों के मत बाधित होते हुये नहीं समझने चाहिए । संभोग, अंगच्छेद तथा मृत्यु के दृश्यों को चित्रित न करने के पीछे सामाजिकों पर असलीलता तथा जुगुप्सा से होने वाले प्रभावों को बचाना भी था । आधुनिक चलचित्र में इन दृश्यों के चित्रण से दर्शकों पर पड़ने वाले कुप्रभावों से सभी परिचित हैं । हमारे नाट्यशास्त्रियों को इस कुप्रभाव का भलीभाँति अनुमान था । यही कारण है कि उन्होंने इनके वर्णन को निषिद्ध किया । मृत्यु के दृश्यों को चित्रित न करने का कारण भी अव्यवहारिकता ही थी । क्योंकि अस्त्रसंचालन पात्रों के लिए घातक सिद्ध हो सकता था । परन्तु यदि कहीं भी मृत्यु आदि का मंचन स्पष्टकार को व्यवहार को दृष्टि से सुविधाजनक लगा तो उसने निःसंकोच इस वर्णन को अपने रूप में स्थान दिया । उदाहरणस्वस्य "भास" ने "उरुभंग" नाटक में दुर्योधन की मृत्यु को चित्रित किया है क्योंकि उसकी मृत्यु में किसी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र संचालन की आवश्यकता नहीं थी । उसकी मृत्यु का कारण बनने वाला घाव पहले ही लग

चुका था । मंच पर तो केवल उसके प्राणों को निकलता हुआ दिखाना था ।

उपर्युक्त घटनाओं की सूचना देने वाले माध्यम को "अर्थो-पक्षेपक" कहा जाता है, ये अर्थोपक्षेपक किसी नवीन पात्र का परिचय कराने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है । यदि पात्र को किना किसी पूर्व सूचना के रंगमंच पर प्रवेश करा दिया जाये तो अचानक उपस्थित हुये पात्र के विषय में दर्शक समझ ही नहीं सकेंगे कि अमुक पात्र कौन है तथा किस उद्देश्य से उपस्थित हुआ है । अर्थोपक्षेपकों के विषय में क्रमशः सागरनन्दी तथा धनंजय का मत इस प्रकार है :-

"डेढ़ दिन में प्रदर्शित किये जाने वाले अंक में एक महीने, एक वर्ष की सम्पूर्ण घटनाओं को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता । अतः अर्थो-पक्षेपकों की सहायता लेनी चाहिए ।"

"वे वस्तु-अंश जो नीरस हैं, जिनमें रसप्रवणता नहीं है, जिनका मंच पर दिखाना नाटककार के लिए नाटक में प्रभावोत्पादकता तथा रसमयता लाने के लिए अनिवार्य है दृश्य कहलाते हैं ।"

घटनाओं की प्रकृति तथा रूप में सूचना देने वाले माध्यमों की स्थिति के आधार पर नाट्यशास्त्र में पाँच अर्थोपक्षेपक स्वीकार किये गये हैं । जो इस प्रकार हैं :-

विष्कम्भक, चूलिका, अंकाख्य, अंकावतार तथा प्रवेशक ।

- 1- "आख्यानं न सर्वमिदं. प्रणेतव्यम् । न संक्षेपाद्देव दिवसकृतं दिवसाधकृते मासकृतं वर्षकृतं वा सकलमुपदर्शयितुमतः. संक्षेपार्थः प्रवेशकः कर्त्तव्यः । अतः प्रवेशकेन कथा संग्रहणं कार्यम् ।" - नाटकलक्षण रत्नकोश, पृ०-14-15

"विष्कम्भक" रूपक में घटित हुई अथवा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का वह सूचक है, जिसमें मध्यम पात्रों के द्वारा संक्षेप में इन कथांशों की सूचना दी जाती है। "प्रवेशक" भी विष्कम्भक की तरह अतीत तथा भावी घटनाओं का सूचक है। अन्तर इतना है कि प्रवेशक में घटनाओं को सूचित करने वाले पात्र निम्न कोटि के होते हैं। प्रवेशक की योजना रूपक में सदैव दो अंकों के बीच में की जाती है जबकि विष्कम्भक का प्रयोग प्रथम अंक के प्रारम्भ में भी हो सकता है। वस्तुतः देखा जाय तो प्रवेशक और विष्कम्भक की पृथक्-पृथक् चर्चा किये जाने की आवश्यकता नहीं थी, इसे विष्कम्भक के एक प्रकार के रूप में भी वर्णित किया जा सकता था। नाट्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा किया गया एक अनावश्यक विस्तार है।

रूपक में कथांशों की सूचना जब यवनिका के अन्दर बैठे हुये पात्रों द्वारा दी जाये तो वहाँ "चूलिका" तथा जहाँ एक अंक की समाप्ति के समय उस अंक में प्रयुक्त पात्रों द्वारा किसी छूटे हुये अर्थ की सूचना दी जाये तब वहाँ "अंकाख्य" नामक अधोपक्षेपक होता है। प्रथम अंक की कथावस्तु का विच्छेद हुये बिना, दूसरे अंकी की कथावस्तु उसी क्रम में चलती रहे तो वहाँ "अंकावतार" नामक अधोपक्षेपक होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रूपक में वहीं वर्णन प्रस्तुत किये जाते हैं, जो रोचक होते हैं, परन्तु वह वर्णन तथा सूचनार्ये जो आवश्यक तो हैं, लेकिन उनका विस्तार रोचक नहीं हो सकता उनके परिचय के लिए अधोपक्षेपकों की सर्जना की गयी है।

### कथानक संरचना के लिए आवश्यक निर्देश =====

सर्वप्रथम स्पष्टकर किसी कृति की रचना करने के लिए कथानक का चयन करता है । कथानक का चयन करते समय उसके लिए यह आवश्यक है कि कथानक में अद्भुतता एवं अनपेक्षता होनी चाहिए । यह पता नहीं लगना चाहिए कि कौन सी घटना कब घटित हो जायेगी । इसी से कथानक को नाटकीय बनाया जा सकता है । उदाहरणस्वरूप कालिदास की एक स्पष्ट लिखने की इच्छा रही होगी, उनके सामने कई कथानक आये होंगे । उनमें से एक शकुन्तला का उपाख्यान भी रहा होगा । कवि को अन्य उपाख्यानो की तुलना में यह कथानक अधिक सूचिकर एवं ~~फलप्रद~~ लगा होगा क्योंकि इसमें एक सुन्दर कन्या का आश्रम में चक्रवर्ती राजा दुष्यन्त से विवाह कर लेना, दरबार में राजा का उसे त्यागना, शकुन्तला के द्वारा राजा की निन्दा करना, स्वर्ग एवं पृथ्वी का मिलन । विश्वामित्र और मेनका अप्सरा के रूप में तथा दुष्यन्त और शकुन्तला के रूप में । शकुन्तला का एक बच्चे को जन्म देना इत्यादि बातें कवि के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालती हैं । कालिदास इस सम्पूर्ण वृत्तान्त को नाटकीय रूप देने को अत्यधिक उपयुक्त पाते हैं । यद्यपि यह सम्पूर्ण वृत्तान्त महाभारत के "शकुन्तलोपाख्यान" में भी बहुत रोचक है तथापि इस कथा को नाटकीय रूप देने के लिए एक कुशल नाटककार की आवश्यकता थी जो कालिदास के द्वारा पूर्ण कर दी गयी । परिणामस्वरूप "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" जैसी काल-जयी कृति निर्मित हुयी ।

इस प्रकार चयन किये हुये कथानक में परिवर्तन करने के पश्चात् तथा उसे अधिप्रकृति, कायीवस्था, सन्धि तथा अधोपक्षेपक इन भागों में विभक्त करने के पश्चात् यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि स्पष्टकर कथानक की किस प्रकार संरचना करे, जिससे कि वह दृश्यों को अधिक से अधिक

प्रभावित कर सके तथा मनोरंजन कराते हुये उनके सामने एक आदर्श प्रस्तुत कर सके । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नाट्य आचार्य रूपकार को निम्नलिखित नियमों का पालन करने का निर्देश देते हैं ।

कथानक संरचना के लिए "गाय की पूँछ के अग्रभाग" की उपमा दी जाती है । भरत के अनुसार इसका अभिप्रायः यह है कि उच्च विचारों को क्रमशः बाद में प्रस्तुत करना चाहिए ।<sup>1</sup> सागरनन्दी के मत में नाटक की विषयवस्तु को समझकर पूर्वार्ध में नाटक को विस्तृत करना चाहिए, फिर धीरे-धीरे उसका संहार करते हुये उच्च विचारों का अन्त में रखना चाहिए ।<sup>2</sup>

यह बात आश्चर्यजनक है कि कथानक की इस व्यवस्था के सम्बन्ध में धनञ्जय ने कुछ नहीं कहा है । परन्तु परवती आचार्य विश्वनाथ ने पुनः कथानक संरचना को "गोपुच्छ के अग्रभाग" के समान माना है ।<sup>3</sup> उनके अनुसार "पुच्छाग्र" के दो अर्थ किये जा सकते हैं । प्रथम मत है कि नाटक पहले विस्तृत तथा बाद में संक्षिप्त होना चाहिए तथा दूसरा मत यह है कि पूँछ में सभी बाल समान नहीं होते, कुछ अन्त तक पहुँचते हैं, कुछ बीच तक तथा कुछ बीच तक भी नहीं पहुँच पाते । इसी प्रकार नाटक में कुछ घटनाएँ अन्त तक पहुँचती हैं, कुछ बीच में तथा कुछ

1. नाट्यशास्त्र - 20.46

2. "नाटकमिदं कथाबन्धमालोक्य पूर्वभागे विस्तारणीयम् । पश्चार्धे च संहारणीयम् । तस्मिंश्च उदात्ता भावास्ते अवधारणीयाः ।"  
- सागरनन्दी, नाटकलक्षण रत्नकोश ।

3. "गोपुच्छाग्रसमागं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम् ।" - साहित्यदर्पण 6.11 ।

प्रारम्भ में ही समाप्त हो जाती हैं ।<sup>1</sup> वस्तुतः यहाँ जटिलताओं का संक्षिप्तीकरण अभिप्रेत है न कि आकार का ।

स्थककार अपनी रचना में कुछ ऐसे संकेत देता है, जिनका सम्बन्ध आगे की कथा से होता है । यह संकेत केवल पुरुष दशकों के लिए होते हैं । सामान्य दशक इनका अभिप्रायः नहीं ग्रहण कर पाते । नाट्य-शास्त्र में इन संकेतों को पताकास्थानक कहा जाता है । कथानक को आकर्षक बनाने के लिए आचार्यों द्वारा बताये गये विभिन्न उपायों में पताकास्थानक का बहुत महत्त्व है । पताकास्थानक व्यंजनाशक्ति के माध्यम से कथानक को अतिरिक्त आकर्षण प्रदान करता है । नाट्यदर्पण के अनुसार "निश्चित किये हुये प्रयोजन तथा उपाय की प्राप्ति, जहाँ कथाभाग के प्रधानफल की सिद्धि में उपकारक होती है वह कथाभाग "पताकास्थानक" कहा जाता है ।<sup>2</sup>

पताकास्थानक परस्पर उन घटनाओं को जोड़ता है जिनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता । यही कारण है सभी आचार्यों ने इसे नाटक का आभूषण बताया है । किसी घटना का अभिधा से कुछ और अर्थ होने पर भी व्यंजना से कुछ अन्य अर्थ प्रस्फुटित होता है । वस्तुतः पताका-स्थानक का उचित प्रयोग नाटककार की कला को प्रदर्शित करता है ।

1. "गोपुच्छाग्रसाग्रमिति कुमेणांकाः सूक्ष्माः कर्तव्या इति कैचित् । अन्येत्वाहुः यथा गोपुच्छे कैचिद् बाला हृत्वाः कैचिदीधस्तिथेह कानिचित् कार्याणि मुखसन्धौ समाप्तानि कानिचित् प्रतिमुखे । एवमन्येष्वपि कानिचित् कानिचिदिति ।" - साहित्यदर्पण 6.11। वृत्ति
2. "अध्यवसितात् प्रयोजनादुपायश्च अन्यस्य प्रयोजनस्योपायस्य च प्राप्तिरिति वृत्ते उपकारिणी, प्रधानफलोपकारिकातदितिवत्तं पताकास्थानकम् ।" - नाट्यदर्पण , 1, पृ044



उदाहरणस्वरूप पताकास्थानक का कलात्मक प्रयोग कालिदास के "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" के प्रथम अंक में देखा जा सकता है। रथ पर आरुढ़ होकर मृग का पीछा करते हुये राजा दुष्यन्त से कण्व आश्रम का एक तपस्वी प्रार्थना करता है कि "फूलों पर अग्नि के समान अपने वाण को मृग के कोमल शरीर पर मत छोड़ों। कहाँ तो मृगों का अस्थिर जीवन और कहाँ आपका वज्र के समान तथा तीक्ष्णवाण।"<sup>1</sup> यद्यपि यह कथन प्रत्यक्ष रूप से मृग के आखेटक से ही सम्बन्धित है परन्तु इसका दूसरा अर्थ सहृदयों को ही बुद्धिगम्य होता है। उन्हें इस तथ्य का अनुभव होता है कि प्रेम करते समय राजा के प्रेम का बाण निदोष शकुन्तला को भी उतना ही अभागा सिद्ध होगा जितना मृग को। यह व्यंजित अर्थ निश्चित रूप से सहृदयों को अतिरिक्त आनन्द प्रदान करता है।

इसी प्रकार भवभूति का एक पताकास्थानक बहुत रोचक है। राम सीता की प्रशंसा में एक श्लोक बोलते हैं, जो इन शब्दों के साथ समाप्त होता है - "किमस्या न प्रेयो ? यदि परमसह्यस्तु विरहः।"<sup>2</sup> । सीता की कौन सी वस्तु प्रिय नहीं है अर्थात् सभी कुछ प्रिय है। परन्तु इसकी जो सर्वथा असह्य वस्तु है वह है विरह" । । वह ।राम। इस बात को समाप्त कर भी न पाये थे कि प्रतीहारी प्रवेश करके कहती है - "देव उपस्थितः।" ।देव उपस्थित हो गया। । यहाँ प्रबुद्ध सामाजिक "विरह" तथा "उपस्थित हो गया" के बीच संगति बिठाकर यह वाक्य बना लेते हैं "विरहः उपस्थितः" । विरह उपस्थित हो गया । । यद्यपि ये दोनों बातें अलग-अलग व्यक्तियों के मुख से अलग-अलग सन्दर्भ में

1- अभिज्ञान शाकुन्तलम् - 1.10 ।

2- उत्तररामचरितम् - 1.38 ।

कही गयी हैं लेकिन अचिर भविष्य में सीता का वियोग होता ही है । अतः इन दोनों वाक्यों का प्रयोग कवि ने कुशलतापूर्वक तथा सायास किया है । इस प्रकार यह एक औचित्यपूर्ण पताकास्थानक है जो सहृदयों को अतिरिक्त आनन्द प्रदान करता है ।

रूपककार को सम्पूर्ण रूपक में सही भावनाओं के चित्रण में बहुत अधिक सावधान रहना चाहिए क्योंकि रूपक में प्रत्येक वस्तु यहाँ तक कि भावनायें भी पात्रों के कार्यों एवं वातालाप द्वारा चित्रित की जाती हैं । रूपककार कहीं भी कुछ बताने के लिए स्वयं नहीं आता । मुख्य कथानक सहायक कथानक से दबना नहीं चाहिए । पात्रों की संख्या निश्चित कार्यों के साथ सीमित होनी चाहिए जिससे कथानक का विकास हो सके । रूपककार को नीरस प्रयोगों को सरस बनाना चाहिए अन्यथा वे अनावश्यक हो जायेंगे ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि रूपककार को स्वयं कुछ कहने का अवकाश नहीं होता अतः विभिन्न पात्रों के चलने फिरने के निर्देश भी मौखिक रूप से दिये जाते होंगे अथवा नटों की टोली में परम्परागत रूप से प्रचलित होंगे क्योंकि संस्कृत नाटकों में निर्देश के बहुत कम चिह्न प्राप्त होते हैं । यथा "नान्यन्ते सूत्रधारः प्रविशति, प्रविश्य, इति निष्क्रान्तौ" इत्यादि । भारतीय विचारकों के अनुसार आधुनिक अंग्रेजी नाटकों में दिये जाने वाले सूक्ष्म तथा विस्तृत रंगमंच के निर्देश अनाटकीय हैं । नाटककार को इतना कुशल होना चाहिए कि स्वयं पात्रों के कथनों द्वारा समस्त पृष्ठभूमि स्पष्ट हो जाये । यदि वह कथानक के बाहर किसी भी साधन से सहायता लेता है तो वह एक कहानी कहने वाला समझा जायेगा ।

रूपक के पात्रों के कथन इस प्रकार होने चाहिए कि नाटक-कार को कुछ भी बताने अथवा व्याख्या करने की आवश्यकता ही न रहे,

क्योंकि वह स्वयं एक बाह्य व्यक्ति है । उपन्यासकार जब उपन्यास में किसी भी बिन्दु को अस्पष्ट पाता है तो वह कथा में स्वयं प्रवेश करके उस बिन्दु को स्पष्ट कर देता है परन्तु रूपककार ऐसा नहीं कर सकता । रूपक में रूपककार का स्वयं का व्यक्तित्व प्रकट नहीं होना चाहिए ।

रूपक में कवित्व शक्ति का विस्तृत प्रदर्शन नहीं होना चाहिए इसमें कथानक सर्वप्रमुख होता है । रामचन्द्र गुणचन्द्र भी इसी मत के समर्थक हैं । उनके अनुसार "समुद्र इत्यादि के व्यर्थ के वर्णन नहीं किये जाने चाहिए जिनसे केवल कवि की कल्पना को बल मिलता हो"। प्रकृति के वर्णन अधिक नहीं करने चाहिए । इनका वर्णन तभी तक करना चाहिए जब तक कथानक से उच्च स्थान न प्राप्त कर सकें । यदि कथानक इन वर्णनों से गौण लगने लगे तो तुरन्त इन वर्णनों को त्याग देना चाहिए ।

औचित्य एक ऐसा तत्त्व है जिसकी सर्वत्र आवश्यकता होती है । अनौचित्य सदा ही गद्ध्य होता है । अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि रूपक में औचित्य होना चाहिए । रस का रहस्य औचित्य है । आनन्दवर्धन के शब्दों में "अनौचित्य से बढ़कर रसभंग का दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता ।<sup>2</sup> रूपककार अपने पात्रों के मुख से जो कुछ भी कहलाये अथवा उनसे जो भी कराये, उस सबमें औचित्य के प्रति सजग रहना चाहिए । उदाहरणतः राम की छवि आदर्श व्यक्ति के रूप में

1. "सिन्धुवादिहं हि काव्यकण्डूवशात् निष्फलं न वर्णनीयम् ।

नाट्यदर्पण, 1, पृ 32

2. "अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्"

आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, पृ 100

प्रसिद्ध है । अतः नाटककार उनके मुख से भद्दी शब्दावली का प्रयोग नहीं कर सकता । इसी प्रकार राम कथा को आधुनिक परिवेश में प्रस्तुत करना समीचीन नहीं है । यदि रावण राम के विरुद्ध परमाणु अस्त्रों का प्रयोग करने लगे तो यह अनौचित्य पूर्ण होगी ।

रूपककार को जीवन तथा संसार का प्रेमी होना चाहिए । एक सन्यासी जो हर समय तत्त्व ज्ञान की खोज में लगा रहता है, वह नाटक में जीवन का चित्रण नहीं कर सकता । उसके लिए दुष्यन्त और शकुन्तला की आकर्षक प्रेमलीलायें व्यर्थ हैं । आनन्दवर्धन का मत भी इसी प्रकार है - " यदि कवि शृंगार प्रिय होगा तो काव्य में उसके लिए समस्त संसार ही रसमय हो जायेगा तथा वीतराग व्यक्ति के लिए सबकुछ नीरस हो जायेगा । " <sup>1</sup> ये बात नाटककार के लिए भी उतनी ही सत्य है ।

नाट्यशास्त्रियों ने रूपक की कथा को सन्धियों में भली-भाँति बाँधने का निर्देश दिया है । नाटक में मनुष्य के सुख-दुःख की अवस्थाओं का तथा विविध रूपों वाली प्रकृति का चित्रण होना चाहिए । <sup>2</sup>

कवि रचना में एक उच्च आदर्श भी प्रस्तुत करता है । वह नैतिकता के ही माध्यम से इस उद्देश्य में सफल हो सकता है क्योंकि अनैतिकता कभी भी लोगों के मस्तिष्क को ~~स्थायी~~ रूप से प्रभावित नहीं कर सकती । ये सीमित लोगों से अस्थायी रूप से कुछ प्रशंसा भले ही प्राप्त कर ले परन्तु इस विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि जो भी उपदेश दिये जायें अथवा नैतिकता प्रतिपादित की जाये वह परोक्ष होनी चाहिए । रूपककार को किसी अध्यापक के समान सीधे-सीधे उपदेश नहीं देने चाहिए । रूपक को इस प्रकार प्रदर्शित करना चाहिए कि दर्शकों में कुछ सान्त्विक भावनायें स्वयं ही उद्भूत हो जायें । दर्शकों को स्वयं ही लगने लगे कि

1. ध्वन्यालोक-3, पृ० 498 ।

2. नाट्यशास्त्र 21, 120-123 ।

क्या उचित है तथा क्या अनुचित है । पात्रों को कुछ भी बताने की आवश्यकता न हो ।

### शास्त्रीय सिद्धान्तों का स्वकों में पालन

नाट्यरचना के शास्त्रीय सिद्धान्तों की चर्चा करने के पश्चात् यह जानना भी आवश्यक है कि इन सिद्धान्तों का प्रयोग लक्ष्यग्रन्थों में किस सीमा तक किया गया है । उपर्युक्त सिद्धान्त किसी सफल स्वक की रचना के लिए महत्त्वपूर्ण तो हैं परन्तु इन सिद्धान्तों का निष्ठापूर्वक पालन करने से एक संशय यह रहता है कि रचना एक सचि में ढली हुयी सी प्रतीत होने लगती है तथा नाटककार को अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिए बहुत कम अवकाश रह जाता है । वस्तुतः भरत के नाट्य-शास्त्र सम्बन्धी प्रारम्भिक नियम बहुत उदार थे, परन्तु समय के साथ-साथ परवर्ती नाट्यशास्त्रियों ने उन्हें कठोर से कठोरतर बनाना प्रारम्भ कर दिया । परिणामस्वरूप कुछ ही नाटककारों ने मौलिक शैली अपनाने का साहस किया है । यही कारण है कि सम्पन्न पौराणिक स्रोतों के होते हुये भी भारतीय स्वक पश्चिम के दुर्लभ नाटकों के समान प्रसिद्धि नहीं प्राप्त कर सके ।

महाकवि भास ने अपने नाटकों में तीनों प्रकार की प्रख्यात, कल्पित तथा मिश्रित कथावस्तु का प्रयोग किया है । यद्यपि सभी नाटकों का स्रोत रामायण, महाभारत, भागवत् तथा बृहत्कथा है तथापि कवि ने इनका अन्धानुकरण नहीं किया है । मिश्र कथावस्तु वाले नाटकों को मिश्र इसलिए कहा गया है कि उनमें पात्रों के पौराणिक होने के बावजूद कथानक पूर्ण रूप से आविष्कृत है । यद्यपि "पंचरात्र" महाभारत के विराट् पर्व पर आधारित है तथापि नाटक में प्रस्तुत की गयी विशेष परिस्थिति मौलिक है । भास द्वारा प्रदर्शित नाटक का उपसंहार न केवल उनकी

मौलिक रचना है बल्कि महाभारत के विपरीत भी है । हम देखते हैं कि राजा दुर्योधन, द्रोणाचार्य को दिये गये अपने वचनों को पूर्ण करने के लिए पाण्डवों को आधा राज्य दे देता है जिससे महाभारत से होने वाला विनाशकारी युद्ध टल जाता है। इस प्रकार यद्यपि नाटक में पात्र प्रसिद्ध हैं तथापि प्रस्तुत की गयी परिस्थितियाँ पूर्ण रूप से भिन्न हैं । इसी प्रकार मध्यम व्यायोग में मध्यम पाण्डव भीम की, उसके पुत्र घटोत्कच से मार्ग में हिडिम्बा द्वारा भेंट कराया जाना कवि की कल्पना है । दूत घटोत्कच भी कवि की अपनी कल्पना है । महाभारत में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है ।

भास ने अपने नाटकों में भरत के नियमों की तथाकथित अवहेलना की है । वस्तुतः इसे अवहेलना नहीं समझना चाहिए क्योंकि भरत स्वयं नाट्यशास्त्री होने के साथ-साथ एक नाटककार, अभिनेता तथा निर्देशक प्रतीत होते हैं । उन्होंने नाट्यशास्त्र के विकास के लिए उदार-तापूर्वक पर्याप्त अवकाश छोड़ा था । वह नाटक के मंचन में आने वाली व्यवहारिक समस्याओं से परिचित रहे होंगे । अतः भास द्वारा यदि उनके कथन से मेल न खाने वाला कुछ कहा भी गया हो तो उसे नाटक के विकास में एक कड़ी माना जाना चाहिए ।

स्वक में प्रस्तावना संक्षिप्त होनी चाहिए क्योंकि जितना संक्षिप्त परिचय होगा उतनी ही रचना अच्छी मानी जायेगी । किता किसी परिचय के भी अच्छा रूपक विशेषताओं को प्रदर्शित कर सकता है । इस दृष्टि से भास तथा कालिदास ने अपनी रचनाओं में बहुत छोटे-छोटे परिचय दिये हैं । रचनाओं में स्वककार का परिचय देने का कारण यह था कि उस समय परिचय देने के अतिरिक्त स्वक के प्रचार प्रसार के लिए अन्य कोई माध्यम नहीं था ।

नाट्यशास्त्र के अनुसार शृंगार अथवा वीररस युक्त कथानक को ही नाटक का विषय बनाया जा सकता है । परन्तु नागानन्द तथा मुद्राराक्षस नाटकों में इस मान्यता का खण्डन हुआ है । हर्ष ने यह सिद्ध किया है कि नाटक रचना के लिए शृंगारिक कथानक ही एक मात्र कथानक नहीं होता । उनके नागानन्द नाटक का कथानक शान्त रस से सम्पन्न है । यद्यपि मुद्राराक्षस नाटक में भी वीर या शृंगार से सम्बन्धित कथानक नहीं लिया गया है तथापि मुद्राराक्षस एक उच्चकोटि का नाटक है । इसके अतिरिक्त मुद्राराक्षस नाटक में नायक का चयन भी परम्परा से भिन्न है क्योंकि इसका नायक चाणक्य है जो एक ब्राह्मण है । नाट्यशास्त्र के अनुसार कोई ब्राह्मण नाटक का नायक नहीं हो सकता । अतः उक्त नाटक में भी शास्त्रीय परम्परा का उल्लंघन हुआ है । यद्यपि कुछ व्यक्तियों ने चन्द्रगुप्त को नायक सिद्ध करने का प्रयत्न किया है परन्तु यह उचित नहीं है क्योंकि नायक बही होता है जिसे फल प्राप्त हो । फल प्राप्त चाणक्य को होता है न कि चन्द्रगुप्त को अतः इस कथानक का नायक चाणक्य हुआ न कि चन्द्रगुप्त । यदि दुर्जन-तोष न्याय से चन्द्रगुप्त को नायक मान भी लिया जाये तो उसे फल की प्राप्ति नहीं होती जबकि नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार फल की प्राप्ति नायक को होनी चाहिए अतः नायक को फल की प्राप्ति न होने के कारण भी नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से उल्लंघन ही है ।

संस्कृत नाट्य की तकनीक इतनी सम्पन्न तथा विकसित है कि उसका समुचित प्रयोग ही किसी भी कथानक को नाटकीय स्वरूप प्रदान कर सकता है परन्तु तकनीक की सम्पन्नता तथा उपयोगिता के होते हुये भी परवर्ती नाटककारों ने सही नाटकीय अर्थ को न समझने के कारण अच्छे नाटक लिखने में सफलता प्राप्त नहीं की है क्योंकि तकनीक नाटक को प्रत्येक वस्तु दे सकती है परन्तु आत्मा नहीं दे सकती । आत्मा तो

नाटककार की प्रतिभा पर ही निर्भर है जो रस निवेश से सम्बन्धित है ।

### आधुनिक स्पर्कों की कथावस्तु संरचना

आधुनिक संस्कृत नाटक पाश्चात्य स्पर्कों के प्रभाव से परिपूर्ण हैं । स्पर्कों के अंकों को दृश्यों में भी विभाजित किया जाने लगा है, जिसमें समय तथा स्थान के संकलन का भी ध्यान नहीं रखा गया है । कुछ स्पर्क आत्मकथा की शैली में लिखे गये, जिनके आधार पर यह कहना कठिन होता है कि यह स्पर्क हैं अथवा आत्मकथा । इस प्रकार के स्पर्कों में आधुनिक स्पर्ककार "जयवीर चौधरी" के स्पर्क प्रमुख हैं । "जयवीर चौधरी" के स्पर्कों में नाटकीय तत्त्व बहुत कम हैं । इनके कुछ स्पर्कों में रंगमंच पर वक्ता के मुख से दार्शनिक बातें प्रत्यक्ष रूप से कहलवाई गयीं हैं । इस प्रकार का एक स्पर्क "विमलयतिन्द्रम्" है । । इस आधार पर कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर स्पर्क लिखना सरल कार्य नहीं होता । स्पर्ककार को यह देखना होता है कि रचना केवल इतिहास अथवा आत्मकथा ही बनकर न रह जाये । उसमें केवल नीरस तिथियों का संग्रह नहीं होना चाहिए और केवल कल्पना भी नहीं लगनी चाहिए । इस प्रकार नाटक में मनोरंजकता बनाये रखते हुये कल्पना तथा ऐतिहासिकता का औचित्यपूर्ण नियन्त्रण बनाये रखना चाहिए ।

आधुनिक स्पर्कों में कई गीतों एवं कविताओं का भी संग्रह किया जाता है । कुछ नाटकों में भक्ति का प्रचार भी किया जाता है परन्तु इनमें प्रचार की अपेक्षा ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव प्रमुख होता है । उदाहरण स्वरूप "जयवीर चौधरी" का "दीनदासघुनाथम्" स्पर्क



भक्ति भावना से ओत-प्रोत है ।<sup>1</sup>

आधुनिक स्पर्कों के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि किसी नाटक का नायक कोई महाकवि या कवियत्री भी हो सकती है । डा० वी० राघवन ने अपने स्पर्क "प्रेक्षणकत्रयी" में विजयंका, विकटनितम्बा तथा अवन्तिसुन्दरी नामक कवियत्रियों को नायिका बनाया है ।<sup>2</sup> एस०वी० वेलकर का राजशेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी के ऊपर लिखा गया "अवन्तिसुन्दरी" नाटक भी उपलब्ध होता है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आवश्यक नहीं कि नाटक का नायक प्रख्यात हो अथवा नायिका प्रधान नाटक भी लिखे जा सकते हैं ।

आधुनिक संस्कृत स्पर्कों में यह आवश्यक नहीं कि किसी उच्च-वंश में उत्पन्न नायक ही हो, इन स्पर्कों में किसी विचारधारा का प्रचार भी किया जा सकता है । उदाहरणस्वरूप "हरिदास सिद्धान्तबागीश" के "वंगीयप्रतापम्"<sup>3</sup> नाटक में इस मिथक का खण्डन किया गया है कि बंगाली योद्धा नहीं हो सकते । इसमें हिन्दुत्व को भी महिमा-मण्डित किया गया है । इनके नाटक देशप्रेम की भावना से ओत-प्रोत है ।

आधुनिक स्पर्कों की एक प्रवृत्ति यह भी है कि वे प्राकृत के प्रयोग से बचते हैं तथा हिन्दी अथवा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग करते हैं । "मथुराप्रसाद दीक्षित" ने अपने स्पर्कों में सामान्य नाटकीय नियमों का पालन किया है जिनमें कथाद्वयात, पताकास्थानक तथा

---

1. Usha Satyavrat - Sanskrit Drama of Twenty Century,

P. 44

2. Ibid - P. 52

3. Ibid - P. 81

विष्कम्भक आदि प्रमुख हैं। परन्तु उन्होंने प्राकृत का प्रयोग किये जाने की एक स्थापित परम्परा का उल्लेख किया है। "वीरपृथ्वीराजविजय" तथा "भारत" विजय नाटक में उन्होंने प्राकृत का प्रयोग नहीं किया है।<sup>1</sup> यह नाटक संस्कृत के कुछ विशेष प्रकार के नाटकों में से एक है। अन्य ऐतिहासिक नाटकों के विपरीत इसमें किसी विशेष ऐतिहासिक घटना, ऐतिहासिक व्यक्तित्व का वर्णन नहीं किया गया है। ये इतिहास पर आधारित नहीं बल्कि स्वयं इतिहास है। स्वयं लेखक ने देशप्रेम, अंग्रेजों के प्रति घृणा तथा उनके धन एवं अधिकारों के क्रमिक विनाश का चित्रण किया है।

एक ऐतिहासिक नाटक होते हुये भी उपर्युक्त नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल नाटक है परन्तु इसमें कुछ त्रुटियाँ भी हैं जिन्हें अभिनेता की दृष्टि से न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता जैसे क्लाइव और अमोरचन्द के बीच होने वाली सन्धियों के ग्यारह प्रावधानों का सही क्रम में वर्णन किया गया है। यद्यपि ये विस्तार इतिहास के सही ज्ञान के लिए आवश्यक है तथापि नाटकीयता की दृष्टि से यह बहुत अनुपयोगी है। इसी स्वयं के अन्त में ऐसी घटनाएँ हैं जो अंग्रेजों के अत्याचारों को चित्रित करती हैं। ये घटनाएँ किंचित भी आस्वाद्य नहीं हैं।

वीरपृथ्वीराज विजय नाटक में लेखक का हिन्दी के प्रति प्रेम प्रशंसनीय है परन्तु एक स्वयं में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए जिनसे स्वयं इतिहास का ज्ञान हो, उनका वर्णन नहीं करना चाहिए परन्तु इस नाटक में ठीक इसके विपरीत पाते हैं। नाटक के

---

1. Usha Satyavrat - Sanskrit Drama of Twenty Century, pp. 114-123.

द्वितीय अंक में ललिता और प्रियम्बदा नामक दो सेविकायें पृथ्वीराज और जयचन्द के पूर्वज अनंगपाल से लेकर इतिहास बताना आरम्भ करती है । यदि लेखक ने इतिहास बताने के लिए अप्रत्यक्ष तथा सुन्दर उपाय अपनाया होता तो अधिक अच्छा होता । पूरे नाटक में ऐसा लगता है कि लेखक कुछ बताने का प्रयास करता है । इसके कारण नाटक की नाटकीयता समाप्त हो गयी है । इसी नाटक में ही पृथ्वीराज और चन्दरबाई का सारे दरबारियों की उपस्थिति में परस्पर वध करना नाटकीय नियमों के विपरीत है ।<sup>1</sup>

नाटकीय नियमों के अनुसार नाटक के अंकों की संख्या पाँच से दस तक हो सकती है । सामान्यतः नियम का पालन किया गया है परन्तु अपने को नाटक कहलाने वाले ऐसे नाटक भी उपलब्ध हैं जिनका विस्तार चार या पाँच अंकों तक ही है । इनमें "रविदास" का "मिथ्या-ज्ञानविडम्बन" तथा "पैदान्तवागीश" का "भोजचरित" है । इसके विपरीत एक प्राचीन रूपक भी पाया जाता है जिसके एक संस्करण में चौदह अंक हैं । "कविभूषण" के "अद्भुतानुषंग" में बारह अंक हैं ।

आधुनिक हिन्दी नाटककारों में जयशंकर प्रसाद भी अपने रूपकों की कथावस्तु संरचना में बहुत सफल रहे हैं । भरत के नियमों का अनुसरण करते हुये प्रसाद ने अपने रूपकों की कथावस्तु का स्रोत इतिहास-पुराण, प्रस्तुत समाज तथा शुद्ध कल्पना को ही अपनाया है । "कामना" और "एक घूँट" को छोड़कर प्रसाद के सभी नाटक इतिहास को आधार मानकर चले हैं । प्रसाद ने महाभारत युद्ध के बाद से लेकर हर्षवर्धन के राज्यकाल तक के भारतीय इतिहास को अपने नाटकों का स्रोत बनाया ।

---

1. Usha Satyavrat - Sanskrit Drama of Twenty Century,

प्रसाद ने भारतीय इतिहास में यत्र-तत्र बिखरी सामग्रीयों को एक सूत्र में पिरोने का आश्चर्यजनक प्रयास किया है। "अजातशत्रु" "चन्द्रगुप्त" "स्कन्दगुप्त" नाटकों में ऐतिहासिक कथानकों का बहुत ही विस्तृत विवेचन है। जहाँ तक सम्भव हुआ है इतिहास की मूलप्रकृति का अनुसरण किया गया है परन्तु जहाँ कल्पना का प्रयोग नितान्त आवश्यक है वहाँ नाटककार की स्वतन्त्रता का भी प्रसाद ने उपयुक्त लाभ उठाया है।

प्रसाद के रूपकों में दो प्रकार से कल्पना का प्रयोग हुआ है। प्रथम इतिहास के विकीर्ण सूत्रों को एकबद्धता दी गयी है। द्वितीय ऐसे पात्रों को कल्पना से प्रसूत किया गया है, जिनके विषय में कोई ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। यथा इतिहास में ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि चन्द्रगुप्त ने मालवों का एवं शुद्रकों का सेनापति बनकर सिकन्दरों का विरोध किया हो परन्तु जयशंकर प्रसाद ने इस घटना को प्रस्तुत किया है।

प्रसाद के लगभग सभी रूपकों में वस्तुविन्यास सुव्यवस्थित है। प्रसाद की जिन रचनाओं में कायाविस्थाओं, अर्थप्रकृतियों तथा सन्धियों का ध्यान रखा गया है, वे रचनाएँ अन्य रचनाओं की अपेक्षा अधिक सुन्दर हैं। जैसे "चन्द्रगुप्त" स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी नाटकों की तुलना में "जनमेजय" का नागयज्ञ तथा "अजातशत्रु" उतने सुव्यवस्थित नहीं हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कथानक एक ऐसा ढाँचा है जिस पर समस्त रूपक स्वी भवन का निर्माण किया जाता है। वस्तुतः कवि अपनी प्रतिभा से किसी भी वर्ण्य विषय को रोचक बना सकता है परन्तु कुछ विषय वस्तु ऐसी होती हैं जिन्हें वह अधिक सरलता से रोचक और रस के अनुकूल बना सकता है। अतः कवि

के लिए उसी कथानक का चयन करना उचित रहता है जिसके द्वारा रोचक तथा सामाजिकों की रुचि के अनुकूल वर्णन प्रस्तुत किये जा सकें । किसी नाटक में दो विपक्षी राजाओं का चित्रण हो सकता है परन्तु कवि को उसी राजा को नायक बनाना चाहिए जो उस देश के लोगों को मान्य हो । कवि को जनरुचि के कारण तथा अन्य किसी कारण से अपना तिरस्कार नहीं करना चाहिए अर्थात् ऐसा नहीं करना चाहिए कि वह अपनी भावनाओं को रचना में व्यक्त हो न कर पाये । वस्तुतः देखा जाता है कि कवि अपनी रचना में अपने व्यक्तित्व के सूत्र छोड़ देता है । इसका प्रमाण यह है कि आज भी हम अन्तः साक्ष्यों के आधार पर कवि के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हैं इस प्रकार कवि की दृष्टि से भी कथानक का बहुत महत्त्व है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कथावस्तु के प्रारम्भ में एक समस्या उत्पन्न कर दी जाती है तथा नायक के सामने उस समस्या को सुलझाने का लक्ष्य रखा जाता है । नायक इस समस्या को सुलझाने में शौर्यपूर्ण कार्य करता है । इस समस्या के सुलझते ही स्वयं समाप्त हो जाता है । नायक को अपने शौर्यपूर्ण कार्यों तथा जीवन को संशय में डालने के पारितोषिक के रूप में कोई अनिन्द्य सुन्दरी नायिका प्राप्त होती है अथवा किसी राज्य की प्राप्ति होती है । इस समस्या को सहसा नहीं सुलझाया जाता बल्कि उसे पहले और अधिक उलझाकर, सुलझाने की दिशा में नायक के कार्य दिखाये जाते हैं । जहाँ कथा और अधिक उलझती है वहाँ दर्शकों और पाठकों की उत्सुकता भी बढ़ती है तथा वे रचना से विमुख नहीं हो पाते । अच्छे स्वककार की यही कला है कि वह पाठकों और श्रोताओं को बांध ले ।

एक बहत्त यह भी स्पष्ट होती है कि भरत ने स्वयं के कथानक के विषय में जो एक सामान्य स्पष्ट रेखा निर्धारित की थी, उसमें

उदारता पूर्वक विकास की संभावनाओं को स्वीकार किया गया था । इसी का परिणाम यह हुआ कि स्वक में कथानक संरचना में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहे और आज भी हो रहे हैं । यदि किसी परिवर्तन से स्वक की उपादेयता बढ़ जाये तो इससे अन्तर नहीं पड़ता कि उसमें किसी शास्त्रीय सिद्धान्त का उल्लंघन हुआ है अथवा नहीं । इस विषय में लोक ही प्रमाण है ।

महावीरचरित में कथानक संरचना  
=====

## अध्याय - 2

### महावीरचरित में कथानक संरचना

महावीरचरित, मालतीमाधव तथा उत्तररामचरित इन तीन रूपकों में महावीरचरित भवभूति की प्रथम रचना है। उत्तररामचरित भवभूति का सर्वश्रेष्ठ नाटक है, परन्तु उत्तररामचरित की सफल रचना करने तक भवभूति को विकास के जिन चरणों से गुजरना पड़ा, उनमें "महावीरचरित" प्रथम चरण है।

रामायण में वाल्मीकि ने जिस कथा को विस्तारपूर्वक चौबीस हजार श्लोकों में वर्णित किया था, महावीरचरित में भवभूति ने उसी कथा को संक्षेप में अभिनेयता के साथ प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अध्याय में यह विचार किया जायेगा कि महावीरचरित की कथानक संरचना में भवभूति ने क्या परिवर्तन किये हैं, तथा इस दिशा में वह किस सीमा तक सफल हुए हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सर्वप्रथम "रामायण" तथा "महावीरचरित" नाटक के कथानक का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। संक्षेप में यह निम्न प्रकार है :-

स्वयं भवभूति के निम्नलिखित शब्दों से पता चलता है कि महावीरचरित नाटक का उपजीव्य ग्रन्थ रामायण है। "आदिकवि मुनिवर वाल्मीकि ने रघुपति का जो पावनचरित वर्णित किया है, भक्त होने के कारण हमारी वाणी उस पर अनुरक्त हो गयी है; विद्वान लोग प्रसन्न हृदय से उसका आस्वादन करें।"। रामायण में जो रामकथा है वह एक काव्य के रूप में है। इसमें

- 
1. "प्राचेतसो मुनिवृषा प्रथमः कवीनां यत्पावनं रघुपते/प्रणिनाय वृत्तम् ।  
भक्तस्य तत्र समरंसत मेऽपि वाचस्तत्सुप्रसन्नमनसः कृतिनो भजन्ताम्॥



वर्णनों को बहुत विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया है। भवभूति को रामायण में काव्यात्मकता तो रुचिकर लगी होगी, परन्तु उन्होंने नाटकीयता का अभाव अनुभव किया होगा। इस अभाव की पूर्ति हेतु उन्होंने श्रीराम के पावन-चरित को नाटकीयता देने का निश्चय किया होगा। श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन इतना वैविध्यपूर्ण तथा संघर्षमय है कि उसको कई भागों में विभाजित किया जा सकता है परन्तु यदि हम इसे दो भागों में रखें तो प्रथम भाग में उनके जन्म से लेकर राजा बनने की घटना तथा द्वितीय भाग में सीता वनवास से लेकर लवकुश के राम से मिलने की घटना को रखा जा सकता है। महा-वीरचरित नाटक में भवभूति ने राम के जीवन के प्रथम भाग की घटनाओं को आधार बनाया है ।

इस नाटक का प्रारम्भ विश्वामित्र के आश्रम में राम की उप-स्थिति से होता है। इसमें राम सहित चारों भाइयों का विवाह, परशुराम का क्रोध तथा उसका शमन, रामवनवास, सीताहरण, वालीवध, रामरावण युद्ध, सीता की मुक्ति तथा राम द्वारा राज्यप्राप्ति इत्यादि घटनायें प्रदर्शित की गयी हैं। यद्यपि रामायण में भी ये सारी घटनायें हैं तथापि भवभूति ने उन्हें परिवर्तित करके नाटकीयता प्रदान की है। वस्तुतः विश्वामित्र के आश्रम में राम की उपस्थिति से लेकर उनके राज्याभिषेक की कथा अति-विस्तृत है। इसे सात अंकों वाले नाटक में प्रस्तुत करने के लिए एक अतिउत्कृष्ट कला की आवश्यकता है। भवभूति कथानक कला के विशेषज्ञ थे। उन्होंने मूल-कथानक में परिवर्तन करके सराहनीय मौलिक उद्भावनायें प्रस्तुत की हैं, जो इस प्रकार हैं ।

#### परशुराम का उपाख्यान =====

भवभूति ने एक बड़ा परिवर्तन परशुराम के उपाख्यान में किया है। रामायण में राम आदि का विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात् दशरथ

और ऋषियों के साथ, उनके लौटते समय परशुराम उपस्थित होते हैं। परशुराम, राम को धनुष पर तीर चढ़ाने के लिए चुनौती देते हैं तथा उनके वैसा करने पर पराजित होकर वन को लौट जाते हैं।<sup>1</sup> परन्तु महावीरचरित नाटक में ऐसा नहीं होता। इसमें परशुराम धनुषभंग के तुरन्त बाद मिथिला-पुरी में ही प्रस्तुत हो जाते हैं। रामायण में परशुराम का महेन्द्रपर्वत से अकस्मात् पहुँच जाना भवभूति को स्वाभाविक प्रतीत नहीं हुआ। अतः उन्होंने इस घटना में परिवर्तन करके प्रस्तुत किया है।

कवि ने रावण के मंत्री माल्यवान् द्वारा परशुराम का राम के विरुद्ध भड़काया जाना चित्रित किया है। माल्यवान् अपने स्वामी रावण के हित में राम के विरुद्ध षडयन्त्र रचता है। राम के द्वारा शिव का धनुष तोड़ देने पर माल्यवान् को अवसर प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार रामायण के परशुराम महेन्द्रपर्वत से अचानक आते हैं, जो नाटकीय नहीं है। परन्तु एक षडयन्त्र के अन्तर्गत वहाँ आना इस घटना की नाटकीयता की रक्षा करता है।

रामायण में इस उपाख्यान का वर्णन केवल दो सर्गों में किया है लेकिन भवभूति ने इसे दो अंकों तक विस्तृत किया है। इसका कारण यह है कि नायक की महानता को स्पष्टरूप से तभी व्यक्त किया जा सकता है, जब प्रतिनायक की शक्ति तथा विशेषताओं को विस्तारपूर्वक वर्णित किया जाय। सम्भवतः इसी उद्देश्य से भवभूति ने इस घटना का विस्तार किया है। परशुराम से सामना होने पर राम भयभीत नहीं होते बल्कि वह उनकी प्रशंसा करते हैं। यदि कोई सामान्य व्यक्ति होता तो परशुराम के उस रौद्र रूप को देखकर भयभीत हो सकता था परन्तु राम प्रस्तुत नाटक में "महावीर" के रूप में सामने आते हैं। अतः वह आत्मविश्वासपूर्वक उनकी

प्रशंसा करते हैं। कवि को श्रीराम के चरित की गम्भीरता, महानता एवं आत्मविश्वास को प्रकट करने का इससे अच्छा अवसर और कहाँ मिल सकता है? यदि परशुराम के क्रोध को चित्रित न किया जाता तो कवि जनक, शतानन्द तथा दशरथ और विश्वामित्र जैसे महान् तपस्वियों का क्रोध दिखाने में समर्थ नहीं होता। इन व्यक्तियों का यह क्रोध स्वाभाविक है। इनके माध्यम से कवि राम के धैर्य की इन व्यक्तियों से तुलना कर लेता है। जनक, शतानन्द और विश्वामित्र जैसे महान् ज्ञानियों तथा वयोवृद्ध लोगों तक को क्रोध आ जाता है परन्तु श्रीराम निर्विकार रूप से धैर्यपूर्वक परशुराम के आक्षेपों को सहन करते रहते हैं। इससे श्रीराम का जितेन्द्रिय होना स्पष्ट होता है। इस प्रकार भवभूति द्वारा किये गये परशुराम के उपाख्यान की उपयोगिता सहज ही सुव्यक्त हो जाती है।

#### कैकयी की दासी मन्थरा तथा शूर्पणखा की एकस्यता

भवभूति ने मन्थरा के शरीर में रावण की बहिन शूर्पणखा को प्रवेश कराकर कैकयी के चरित्र को काफी सीमा तक दूषित होने से बचा लिया है। प्राचीन उपेक्षित नारियों के चरित्र को बचाने अथवा उनको प्रकाश में लाने का कार्य हिन्दी के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त ने किया है। उन्होंने उर्मिला, कैकयी तथा यशोधरा के चरित्र को नवीनता देकर एक नयी दिशा प्रस्तुत की है। हो सकता है उन्होंने भारतीय नारियों को नवीन चारित्रिक उत्कर्ष देने का विचार भवभूति से ग्रहण किया हो। रामायण में मन्थरा कैकयी को राम के विरुद्ध दशरथ से दो वरदान माँगने के लिए भड़काती है। पहले में "भरत को राजगद्दी" तथा दूसरे में "राम को चौदह वर्ष का वनवास" भवभूति ने इस घटना को मन्थरारूपी शूर्पणखा के माध्यम से मिथिला में ही कैकयी का सन्देश भिजवा कर प्रस्तुत किया है। जिसमें दो वरदान स्वी सन्देश शूर्पणखा की माया द्वारा रचित हैं।<sup>1</sup> रामायण में राम को अयोध्या

पहुँचने पर वनवास दिया जाता है तथा उस वनवास के लिए कैकयी प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी है। रामायण की कैकयी सामाजिकों की घृणा का विषय बनती है परन्तु महावीरचरित में कवि ने उसे प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी न होने के कारण सामाजिकों के प्रकोप से बचा लिया है। यह भवभूति की चरित्र योजना की अद्भुत विशेषता है। इस प्रकार भवभूति ने नाट्यशास्त्र के इस नियम का पालन किया है कि पात्रों के चरित्र के दोषपूर्ण अंश को या तो छोड़ देना चाहिए अथवा अन्य प्रकार से परिवर्तित कर लेना चाहिए।

रामायण में कैकयी केवल राम का वनवास चाहती है परन्तु महावीरचरित में सीता तथा लक्ष्मण के भी वनवास की बात कहकर<sup>1</sup> शूर्पणखा के चरित्र की निष्ठुरता को और अधिक उभारा है जो शत्रुता में किसी भी सीमा तक नीचे जा सकती है। इस प्रकार भवभूति पात्रों की चरित्रगत अच्छाई या बुराई को और अधिक स्पष्ट करने में सफल कलाकार हैं।

#### वाली का उपाख्यान

भवभूति द्वारा किया गया एक बड़ा परिवर्तन वाली के उपाख्यान से सम्बन्धित है। रामायण में राम और सुग्रीव की मित्रता होती है तथा राम मित्रता के कारण वाली को छिपकर मारते हैं।<sup>2</sup> जो तत्कालीन युद्ध के नियमों के विपरीत था। यह घटना मयादा पुरुषोत्तम श्रीराम के चरित्र को कलंकित करती है तथा उनके चरित्र से मयादा शब्द हटाने के लिए एक कारण बन सकती है क्योंकि संकट में ही मयादा की परीक्षा होती है। भवभूति को राम का यह चरित्र स्वीकार नहीं हो सका अतः उन्होंने नाट्यशास्त्र की इस स्वतन्त्रता का पर्याप्त लाभ उठाया कि नाटककार को चरित्रिक

1. महावीरचरित, 4. 4।

2. वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, सर्ग 11.

दोषों में परिवर्तन कर लेना चाहिए ।

इस उद्देश्य के लिए उन्होंने राम और वाली के बीच युद्ध की मौलिक कल्पना की है। उन्होंने महावीरचरित में रावण और वाली के बीच मित्रता को चित्रित किया है। महावीरचरित में रावण वाली को दोस्ती की दुहाई देकर राम के विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार करता है। और वाली उसकी बात मानकर स्वयं ही राम को मारने के लिए तैयार हो जाता है ।<sup>1</sup>

इस नाटक में वाली तथा सुग्रीव के बीच होने वाले युद्ध को छोड़ दिया गया है तथा उन दोनों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध प्रदर्शित किये गये हैं । वाली स्वयं राम से प्रार्थना करता है कि वह सुग्रीव से मित्रता कर लें।<sup>2</sup>

भवभूति द्वारा चित्रित राम से संघर्ष करने वाला प्रत्येक पात्र रावण के षडयन्त्र का एक भाग है। रावण से राम की शत्रुता उस समय से ही प्रारम्भ हो जाती है जब राम शिवधनुष तोड़कर सीता प्राप्त कर लेते हैं तथा रावण देखता रह जाता है। वे सभी घटनायें रावण तथा राम की शत्रुता को पुष्ट करती हैं। जो अन्त में राम-रावण युद्ध का कारण बनती हैं । अतः भवभूति प्रारम्भ से ही भविष्य में होने वाले राम-रावण के युद्ध के वातावरण को तैयार करते रहते हैं।

इन प्रमुख परिवर्तनों के अतिरिक्त कवि ने कुछ छोटे परिवर्तन भी किये हैं, जो इस प्रकार हैं:-

रामायण में स्वयंवर के समय राजा जनक पेटी में रखे पुष्पभूषित धनुष को "मंत्रियों" से मँगवाते हैं<sup>3</sup> जबकि भवभूति ने महावीरचरित में विशेष

1. "त्वान्नियोगादयुक्तोऽपि वधः साधोः करिष्यते ।  
पुज्योऽसि ननु मित्रस्य यो गुरुर्गुरेवम् ।" महावीरचरित-5. 43
2. महावीरचरित, 5मृ 238-240, वाली, सुग्रीव तथा राम का संवाद
3. "ततः स राजा जनकः सचिवान्व्यादिदेश ह ।  
धनुरानीयता दिव्यं गन्धमाल्यविभूषितम् ।।" वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड

परिचर्तन यह किया है कि धनुष "मंत्र" से अर्थात् ध्यानमात्र से ही उपस्थित हो जाता है।<sup>1</sup>

भवभूति ने सर्वमाय नामक राक्षस को रावण के दूत के रूप में प्रस्तुत करके एक और नवीन कल्पना की है। वह रावण के साथ सीता के विवाह का प्रस्ताव लेकर आता है। उसका प्रस्ताव नहीं स्वीकारा जाता है। इस घटना की नाटकीयता यह है कि राम के शौर्यपूर्ण कार्यों को स्वयं अपने नेत्रों से देखता है। वह ताटका तथा सुबाहु जैसे राक्षसों के वध किये जाने का साक्षी है। वह विश्वामित्र द्वारा राम को जुम्भकास्त्र प्रदान करना तथा शिवधनुष तोड़ना देखता है। सर्वमाय की कल्पना करने से महावीरचरित में अत्यधिक नाटकीयता आ गयी है क्योंकि वह राम के चरित से स्वयं इतना प्रभावित हो जाता है कि रावण को जाकर सारी घटनायें यथावत् बताता है उसे यह भी ध्यान नहीं रहता है कि वह रावण के शत्रु की प्रशंसा कर रहा है। इस प्रकार रावण के हृदय में राम के प्रति पहले से ही विद्यमान घृणा और अधिक पुष्ट हो जाती है। और भविष्य की शत्रुता के लिए वातावरण तैयार हो जाता है।

रावण के मंत्री माल्यवान् तथा उसकी बहिन शूर्पणखा के बीच होने वाला संवाद कवि की मौलिक कल्पना है। रामायण में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इस संवाद में कवि अपना राजनैतिक ज्ञान प्रकट करता है जो नाटकीयता की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता।

रामायण में राम का वनवास विवाह के कुछ समय पश्चात् होता है जबकि महावीरचरित में भवभूति ने विवाह के तुरन्त बाद ही राम का

1. शंभोर्वरदानुध्यानमात्रोपस्थानपायि वः ।

रामभद्रस्य पुरतः प्रादुर्भवतु तदनुः ।।

वनवास चित्रित किया है। विवाह के तुरन्त बाद वनवास चित्रित करने के पीछे नाटक को अधिक करुणाजनक बनाने की भावना प्रतीत होती है। भव-भूति करुणरस के परम आचार्य हैं। तथा वे करुणरस को ही एक मात्र मूल रस मानते हैं। अतः वह किसी भी दृश्य को कारुणिक बनाने के अवसर को नहीं छोड़ते अतः रस चर्चणा की दृष्टि से विवाह के तुरन्त बाद वनवास दिखाना उचित ही है।

रामायण में भरत राम के वनगमन के समय अयोध्या में उपस्थित नहीं थे। वह पिता की मृत्यु के पश्चात् अयोध्या में आते हैं तथा उनके वनगमन के वृत्तान्त को जानकर उन्हें वापस लाने के लिए वन जाते हैं। तथा उनकी चरणपादुकाओं को लेकर लौटते हैं। महावीरचरित में भवभूति राम के वन को प्रस्थान करते समय भरत को सबके साथ चित्रित करते हैं तथा वहीं राम से चरणपादुकाओं की याचना करते हैं। इस परिवर्तन के पीछे कवि का उद्देश्य सम्भवतः विषय को संक्षिप्त करना रहा होगा, परन्तु इस संक्षेप की प्रक्रिया में भवभूति ने भरत के चरित्र को ~~वो~~ उत्कृष्टता प्रदान नहीं की जो वाल्मीकि ने भरत को प्रदान की है। रामायण के भरत राज्य को स्वीकार ही नहीं कर सकते थे। उनके सम्मुख राम का वनगमन सम्भव ही नहीं था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भवभूति ने रामायण के कथानक को केवल भाव रूप में ग्रहण किया है। कथानक को नाटकीयता प्रदान करने के लिए उन्होंने महावीरचरित में अनेक प्रयोग किये हैं। कुछ सफल प्रयोग हैं, तथा कुछ असफल। रामायण में भिन्न-भिन्न स्थानों पर घटनायें दिखायी गयी हैं जबकि भवभूति ने संक्षेप के लिए इन घटनाओं को एक ही स्थान पर प्रदर्शित किया है। सीमित समय में नाटक को प्रस्तुत करने के लिए एक अच्छा प्रयोग है। इस कार्य में कथानक में कुछ शिथिलतायें भी आ गयी हैं। तथा कथानक में अनौचित्य आ गया है। जैसे- रघुवंशियों के पुरोहित

वसिष्ठ की अनुपस्थिति में मिथिला में राम का राज्यभिषेक अनुचित प्रतीत होता है। इस प्रसंग में जनक राजा दशरथ को समझाते हुये कहते हैं कि "वामदेव ऋषि उपस्थित हैं तथा वसिष्ठ और विश्वामित्र अनुपस्थित रहने पर भी, शुभ कार्य का अनुमोदन करेंगे ।"।

यह सत्य है कि नाटक में महाकाव्य जितना विस्तृत कथानक प्रस्तुत नहीं किया जा सकता अतः यह आवश्यक है कि कवि उस कथानक में कुछ परिवर्तन अवश्य करे परन्तु परिवर्तन करते समय कवि को बहुत अधिक सचेत रहना चाहिए। अच्छा होता यदि भवभूति ने उपर्युक्त संक्षेपों के लिए कोई अन्य विधि अपनायी होती ।

भवभूति ने नाटकीय क्रियायों का मुख्य सूत्र रावण के मंत्री माल्यवान् के हाथों में रखकर कथावस्तु में एकता तो उत्पन्न की है परन्तु वे माल्यवान् को एक कुशल कुटनीतिज्ञ के रूप में चित्रित करने में सफल नहीं हुये हैं । माल्यवान् प्रत्यक्ष रूप से अपनी योजनाओं की रूपरेखा बनाता है जिससे सामाजिकों को भविष्य में होने वाली समस्त घटनाओं का ज्ञान रहता है। इससे नाटक में सामाजिकों को बाँध कर रखने वाली संशयात्मकता भी नहीं रह पाती । जब किसी व्यक्ति को आगामी घटनाचक्र का पूर्ण ज्ञान होगा ही तो वह उसे जानने में पुनः श्रम क्यों करेगा ।

#### नाट्यशास्त्र के आधार पर कथानक संरचना का मूल्यांकन =====

महावीरचरित में आधिकारिक तथा प्रासंगिक दोनों कथावस्तु देखी जा सकती हैं। राम के जीवन की घटनायें आधिकारिक कथावस्तु हैं तथा वह नाटक के नायक हैं। सुग्रीव तथा विभीषण राम के सहायक हैं अतः

1. "परोक्षे सुकृतं कर्मतयोः प्रीतिं करिष्यति ।

मन्त्रज्ञो वामदेवस्तु भगवानस्त एव हि ॥



उनके जीवन की कथा प्रासंगिक हुई तथा वे पताका नायक हुये ।

महावीरचरित में अर्धप्रकृतियाँ, कायाविस्थायें तथा सन्धियाँ भी प्राप्त होती हैं।

रूपक के प्रथम अंक में मुख सन्धि का विस्तार है। मुख सन्धि में "बीज" नामक अर्धप्रकृति तथा "आरम्भ" नामक कायाविस्था का समायोजन होता है। कवि ने नाटक के प्रारम्भ में ही सूत्रधार के शब्दों में प्रस्तुत रूपक का बीज वपन कर दिया है। सूत्रधार कहता है कि "सदैव विजय प्राप्त करना जिन्हें प्रकृति को देन है तथा संसार की भलाई के एकमात्र कारण हैं," ऐसे राम की शक्ति को जृम्भक इत्यादि अस्त्रों से बढ़ाने के लिए, सीता की प्राप्ति कराने के लिए, रावणवंश का विनाश करने के लिए, विश्वामित्र धनुष तथा अनुज [लक्ष्मण] के साथ लाये हैं ।<sup>1</sup>

जिस प्रकार वृक्ष के बीज में सम्पूर्ण वृक्ष निहित होता है, उसी प्रकार इन शब्दों में रूपक का सम्पूर्ण कथानक निहित है। सूत्रधार के कथन से ही यह भास हो जाता है कि राम कभी पराजित नहीं होंगे, विजय प्राप्त करना जिनका जन्मजात स्वभाव है। वह सदैव अजेय हैं, उन्हें अस्त्रों की प्राप्ति होगी तथा वे रावण के कुल का संहार करेंगे। अतः स्पष्ट है कि नाटक के प्रारम्भ में ही कवि ने नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु का संकेत कर दिया है ।

1. विजयसहजमस्त्रैवीर्यमुच्छ्राययिष्यञ्जगदुपकृतिबीजं मैथिलीं प्रापयिष्यन् ।  
दशमुखकुलधातशलाघकल्याणपात्रं धनुरनुजसहायं रामदेवं निनाय ॥

सिद्धाश्रम में कुशध्वज से सीता तथा उर्मिला का परिचय प्राप्त होने पर राम सीता के प्रति आकर्षित होते हैं।<sup>1</sup> यही "आरम्भ" नामक अवस्था है। अतः कहा जा सकता है कि प्रथम अंक में "बीज" तथा "आरम्भ" का योग होने से "मुख सन्धि" है।

इस सन्धि में समाविष्ट मुख्य घटनार्य निम्न हैं :-

राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने के लिए विश्वामित्र का राम लक्ष्मण को सिद्धा-श्रम में लाना, सीता उर्मिला के साथ जनक के भाई कुशध्वज का आना, विश्वामित्र के यज्ञ में उपस्थित होना, रावण के दूत सर्वमाय राक्षस का पहुँचना, अपने स्वामी रावण के साथ सीता के विवाह का प्रस्ताव रखना, राम के द्वारा ताटका का वध करना, विश्वामित्र के द्वारा राम को जूम्भकास्त्र प्रदान करना ।

मुखसन्धि में वपन किया गया बीज "प्रतिमुख सन्धि" में विकास को प्राप्त करता है। प्रतिमुख सन्धि में "बिन्दु" नामक अर्धप्रकृति तथा "प्रयत्न" नामक कायाविस्था का योग होता है। प्रस्तुत रूपक में द्वितीय अंक के प्रारम्भ से लेकर तृतीय अंक की समाप्ति तक प्रतिमुख सन्धि का विस्तार है।

द्वितीय अंक के आरम्भ में मूलकथा का क्रम माल्यवान् तथा शूर्पणखा के वातालाप से टूटता हुआ प्रतीत होता है लेकिन इसी बीच नेपथ्य से यह कहकर कि "राम की खोज करते हुये कुद्मुनि परशुराम कन्यान्तःपुर की ओर आ रहे हैं"<sup>2</sup> मूलकथा का फिर से सूत्रपात किया गया है। परशुराम

1. उत्पत्तिर्देवयजनाद् ब्रह्मवादी नृपः पिता ।

सुप्रसन्नोज्ज्वला मूर्तिरस्यां स्नेहं करोति मे ॥ महावीरचरित 1.21

2. "त्वां पृच्छन्नामदग्न्यः स्वगुरुहरधनुर्भङ्गरोषादुपैति" वही, 2.17

का प्रवेश मिथिला में सम्पन्न हुये चारों भाइयों के विवाह के बाद की घटनाओं की याद दिला देता है। इस प्रकार कथा के टूटे हुये क्रम में नैरन्तर्य उपस्थित हो जाता है। रूपक में इस प्रकार की अवस्था "बिन्दु" नाम से अभिहित है। राम के विवाह सम्बन्धी कार्य अभी पूर्ण भी न हो पाये थे कि जामदग्न्य के रूप में यह व्यवधान उपस्थित हो जाता है। आने वाले व्यवधानों को दूर करने के लिए नायक को प्रयत्नशील रहना चाहिए। यह प्रयत्नशीलता ही "प्रयत्न" नामक कायाविस्था है। राम, भयभीत सीता को सखियों के सहारे छोड़कर, परशुराम को बड़ी विनम्रता तथा पराक्रम से शान्त करने का प्रयत्न करते हैं। वसिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द जनक तथा दशरथ भी जामदग्न्य को शान्त करने का प्रयत्न करते हैं।<sup>1</sup> इस प्रकार से सभी लोगों द्वारा किया गया प्रयत्न सम्पूर्ण द्वितीय एवं तृतीय अंक में व्याप्त है। दोनों अंकों में बिन्दु तथा प्रयत्न का योग होने से "प्रतिमुख सन्धि" व्याप्त है। इस सन्धि की मुख्य घटनायें निम्नलिखित हैं :-

परशुराम का आगमन, राम को युद्ध के लिए ललकारना, जनक शतानन्द, विश्वामित्र का आना, राम के साथ युद्ध न करने के लिए परशुराम को तैयार करना, तथा युद्ध से राम और परशुराम का विमुख होना।

जब फलप्राप्ति की सम्भावना तो रहती है लेकिन यह निश्चित नहीं हो पाता है कि फलप्राप्ति हो ही जायेगी अर्थात् फलप्राप्ति के विषय में आशंका बनी रहती है। गर्भसन्धि होती है। गर्भसन्धि पताका नामक अर्धप्रकृति तथा प्राप्त्याशा नामक कायाविस्था के योग से होती है। प्रस्तुत रूपक में यह स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। महावीरचरित के चतुर्थ तथा पंचम अंकों में गर्भ सन्धि का विस्तार है। राम की परशुराम पर विजय होने

---

1. महावीरचरित 3.पृ 119-138

से बीज विकसित होता हुआ प्रतीत होता है किन्तु कैकयी द्वारा राम को दिये गये वनगमन के आदेश<sup>1</sup> से फल के प्राप्त होने की आशा समाप्त हो जाती है। नाटक की यह अवस्था "प्राप्त्याशा" कहलाती है। रूपक में सुग्रीव तथा विभीषण की कथा "पताका" है।

"प्राप्त्याशा" नामक कायवस्था में "उपाय" और "अपाय" दोनों का होना आवश्यक है। चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में वसिष्ठ और विश्वामित्र जामदग्न्य को शान्त करते हैं, उनके इस प्रयास में "उपाय" तथा माल्यवान् तथा शूमन्खा<sup>2</sup> की योजनाओं द्वारा उपस्थित व्यवधान "अपाय" हैं। इसी प्रकार खरदूषण तथा दूसरे राक्षसों की मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेने में "उपाय" है अर्थात् खरदूषण और बलशाली राक्षसों की मृत्यु होने से यह आशा बंध जाती है कि राम रावण को अवश्य पराजित करेंगे, परन्तु जटायु का वृत्तान्त "अपाय" है। इस प्रकार "उपाय" और "अपाय" के सम्मिश्रण के कारण इन दोनों अंकों में फलप्राप्ति की सम्भावना कुछ निश्चित तथा कुछ अनिश्चित ही रहती है।

पंचम अंक में सुग्रीव और विभीषण का वृत्तान्त रूपक में अधिक समय तक चलता रहता है जो कि नायक की फलप्राप्ति में सहायक होता है तथा वह अपना भी लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। अर्थात् प्रस्तुत रूपक में सुग्रीव और विभीषण के वृत्तान्त से राम को सीता की प्राप्ति तथा विभीषण एवं सुग्रीव को राज्य की प्राप्ति होती है। रूपक में इसप्रकार की अवस्था पताका कहलाती है। इसप्रकार "प्राप्त्याशा" तथा "पताका" के योग से "गर्भ सन्धि" है। गर्भ सन्धि की मुख्य घटनायें निम्न हैं :-

वसिष्ठ, विश्वामित्र का अपने आश्रम लौटना, परशुराम का राम को अपना धनुष समर्पित कर वन लौटना, कैकयी की दासी मन्थरा के भेष में

---

शूर्पणखा का मिथिला पहुँचना, दासी का संदेशपत्र देना, राम का वनगमन, सीतापहरण, राम का सुग्रीव और विभीषण से मिलना ।

गर्भसन्धि में जिस बीज को विकसित किया गया है, उसको जब और अधिक विस्तृत किया जाता है तथा प्राप्ति निश्चित हो जाती है कि अमुक वस्तु अवश्य होगी। फलप्राप्ति का निश्चय कराने वाली रूपक की यह अवस्था "विमर्श सन्धि" का विषय होती है। "विमर्श सन्धि" "प्रकरी" नामक अर्थप्रकृति तथा "नियताप्ति" नामक कार्यावस्था के योग से उत्पन्न होती है।

प्रस्तुत रूपक के छठे अंक में विमर्श सन्धि व्याप्त है। छठे अंक में समुद्र पर पुल बनाकर राम के द्वारा उसे पार कर लेने से <sup>1</sup> फलप्राप्ति का निश्चय हो जाता है अर्थात् यह निश्चित हो जाता है कि रावण पर राम की विजय अवश्य होगी। इस सन्धि की प्रमुख घटनार्यें निम्न हैं :-

रावण की पत्नी मन्दोदरी के द्वारा लंका पर राम के आक्रमण की सूचना रावण को देना, सेनापति पृहस्त का पहुँचना, शत्रु के आक्रमण के विरुद्ध कदम उठाने के लिए रावण को सूचित करना, राम के दूत अंगद का आना, राम और रावण की सेनाओं के मध्य में वास्तविक युद्ध होना, सारे राक्षस समूह के साथ रावण की मृत्यु होना ।

रूपक की मुख्य कथावस्तु के विभिन्न अंश जो अभी तक इधर-उधर बिखरे हुये थे, जब एक अर्थ कहने के उद्देश्य से तथा बीज का फल बताने के लिए इकट्ठे किये जाते हैं तब वहाँ "निर्वहण सन्धि" होती है। यह सन्धि "कार्य" नामक अर्थप्रकृति तथा "फलयोग" नामक कार्यावस्था के संयोग से सम्पन्न होती है।

प्रस्तुत रूपक के सातवें अंक में "निर्वहण सन्धि" का विस्तार है। राक्षसों का विनाश तथा रावणवंश का विनाश हो जाने पर अन्त में राम सीता मिलन वसिष्ठ, विश्वामित्र ऋषियों के द्वारा राम के राज्याभिषेक के लिए किया गया व्यापार "कार्य" है। तथा अन्त में राम का राज्याभिषेक हो जाने में "फलागम" नामक कायाविस्था है। इस सन्धि की मुख्य घटनायें निम्न लिखित हैं:-

अग्निपरीक्षा के बाद राम का सीता को स्वीकारना, बिभीषण का राज्याभिषेक, रामलक्ष्मण तथा सीता का अयोध्या लौटना, राम का राज्याभिषेक।

रूपक में कुछ वृत्त ऐसे होते हैं जिनमें कोई सरसता नहीं होती अथवा कुछ ऐसे भी होते हैं, जिन्हें रंगमंच पर प्रदर्शित करना नाट्यशास्त्रीय नियमों के विरुद्ध माना जाता है। भवभूति ने अपने रूपकों की कथानक संरचना में इस नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण का काफी सीमा तक पालन किया है। भवभूति के रूपकों में कुछ ऐसे नीरस अंश हैं, जिन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था परन्तु उन्हें छोड़ा भी नहीं जा सकता था क्योंकि यदि उन्हें छोड़ दिया जाय तो मूलकथा में संदेह रह जायेगा। अतः भवभूति ने कथा के ऐसे अंशों को "अर्थोपक्षेपकों" के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

महावीरचरित में भवभूति ने विष्कम्भकों का सफल प्रयोग किया है। उदाहरणतः पाँचवें अंक में सम्प्राप्ति तथा जटायु के वातालाप द्वारा अतीत की घटनाओं का चित्रण किया है। इसी प्रकार "चूलिका" का अनेक स्थानों पर प्रयोग करके भवभूति ने अर्थोपक्षेपकों का श्लाघनीय प्रयोग किया है।

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर यह सुव्यक्त हो जाता है कि भवभूति ने रामायण की कथा को नाटकीयता देने के लिए एक बहुत ही सराहनीय काम किया है। उन्होंने कथानक को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए

विवेकपूर्वक अधिकतर घटनाओं को बदल भी दिया है । भवभूति के इस प्रयास से कथानक में कुछ शिथिलतायें भी आ गयी हैं । जैसे भरत की उपस्थिति में वनगमन दिखाने से महावीरचरित के भरत को रामायण के भरत वाली उत्कृष्टता प्राप्त नहीं हो सकी है। परन्तु यह भवभूति की नाट्यकला के विकास का प्रथम चरण है। उनकी नाट्यकला की उत्तरोत्तर सौन्दर्यवृद्धि कुमशः मालतीमाधव तथा उत्तररामचरित में देखी जा सकती है। अगले अध्यायों में इसकी विवेचना अपेक्षित है।

मालतीमाधव में कथानक संरचना  
=====



## अध्याय - 3

=====

मालतीमाधव में कथानक संरचना  
=====

“मालतीमाधव” भवभूति की द्वितीय रचना है। भवभूति ने “महावीरचरित” की रचना करके जिस रूपक श्रीखला का श्रीगणेश किया था, प्रस्तुत रूपक उस श्रीखला की द्वितीय कड़ी है। मालतीमाधव रूपक की प्रकरण नामक विधा के अन्तर्गत आता है। सामान्यतः प्रकरण नाटक के समान ही होता है परन्तु इसमें कुछ अपनी विशेषताएँ होती हैं। और इन्हीं विशेषताओं के आधार पर प्रकरण को रूपक का एक भिन्न प्रकार माना जाता है। नाटक और प्रकरण की उक्त भिन्नता निम्न प्रकार है।

नाटक में किसी प्रसिद्ध राजा के जीवन की कथा अथवा देवता का कथानक वर्णित होता है जबकि प्रकरण की कथा कविकल्पित होती है।<sup>1</sup> इसका नायक जनसामान्य से ग्रहण किया जाता है। अधिकांश पात्र एवं घटनाएँ तो कल्पना प्रसूत होती हैं परन्तु कोई पात्र ऐतिहासिक भी हो सकता है। इस विषय की विस्तृत चर्चा प्रथम अध्याय में की जा चुकी है।<sup>2</sup>

1. “तत्र कविराज बुद्धया वस्तु शरीरं च नायकं चैव ।

स्वयमुत्पाद्य विश्वेयत्तज्ज्ञेयं प्रकरणं नाम ।” - नाट्यशास्त्र 20.49

“ अथप्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम्” - दशरूपक 3.39

“ भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्” - साहित्यदर्पण 6.224

“ कल्पयेन फलवस्तूनामेक ----- ” - नाट्यदर्पण 2.67

2. प्रथम अध्याय पृ - 5

मालतीमाधव की कथावस्तु कविकल्पित मानी जाती है । परन्तु संस्कृत में रामायण, महाभारत तथा बृहत्कथा ऐसे ग्रन्थ हैं जिनसे संस्कृत का कोई भी रचनाकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकता । भवभूति भी इसका अपवाद नहीं है । भवभूति द्वारा मालतीमाधव में प्रस्तुत की गयी कथा से मिलती हुयी कथा गुणादय की बृहत्कथा । में प्राप्त होती है जो इस प्रकार है ।

शोभावती नगरी में यशस्कर नाम का एक ब्राह्मण रहता था। किसी समय अकाल से पीड़ित होने पर वह विशाला नगरी में आकर रहने लगा । उसने अपने एक मात्र पुत्र को इसी नगरी में अध्ययन के लिए भेजा । वहीं उसका विजयसेन नाम का एक सतीर्थ था । एकबार विजयसेन अपनी बहिन मदिरावती को भ्रमण के लिए गुरु के घर लाता है । वहाँ यशस्कर का पुत्र तथा मदिरावती एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं । प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए मदिरावती अपनी दासी से एक मालती माला यशस्कर पुत्र को भिजवाती है । <sup>2</sup> कुछ समय गुरु के घर रह कर वह अपने घर लौट आती है । मदिरावती के पिता उसका विवाह एक धनवान क्षत्रिय युवक से निर्धारित कर देते हैं । यह समाचार पाकर यशस्कर पुत्र आत्महत्या करने का प्रयास करता है । जब वह आत्महत्या कर

1. यद्यपि बृहत्कथा प्राप्त नहीं है तथापि इसका सारसंग्रह "क्षेमेन्द्र" कृत "बृहत्कथा मंजरी" तथा "सोमदेव" कृत "कथासरित्सागर" में प्राप्त होता है ।

2. "इत्युक्त्वा सार्पिता मह्यं माला चतुरथा तथा ।

सपञ्चफलकपूरे-नगिवस्ती-दलेर्युता ॥

प्रियास्वहस्तरचितां कण्ठे कृत्वा च तमहम् ।

सुखं किमपि संप्राप्यं तत्तदालिङ्गनाधिकम् ॥ - कथासरित्सागर 13, 1,  
#6-47

ही रहा था कि एक नवयुवक पथिक उसे बचा लेता है। यह नवयुवक भी अपने प्रेम में हताश हो चुका था। उसे यशस्कर के पुत्र के प्रति सहानुभूति हो जाती है। तथा उन दोनों में मित्रता हो जाती है। यह युवक यशस्कर पुत्र को अपनी प्रेमकथा के बारे में बताता है जो इस प्रकार है।

“वह निषाद देश का रहने वाला है। भ्रमण करते समय उसने शंखपुर में एक नवयुवती को देखा और उस पर अनुरक्त हो गया। इस युवक को युवती के माता-पिता के विषय में भी कोई जानकारी नहीं थी। पथिक ने बताया कि अचानक उस युवती पर एक जंगली हाथी ने आक्रमण कर दिया था तथा उसने युवती को हाथी के आक्रमण से बचा लिया। तदनन्तर युवती अपने घर चली गयी, युवक उस युवती के प्रेम में व्याकुल होकर उसे खोजता रहा। अन्ततः खोजते-खोजते उस स्थान पर पहुँचता है जहाँ पर यशस्कर का पुत्र आत्महत्या कर रहा था।”

जिस समय वह दोनों बातें कर ही रहे थे उसी समय संयोग-वश मंदिरावती कामदेव के मंदिर में पूजा करने आती है। यशस्कर उसे पहचान लेता है। वे दोनों मित्र मंदिरावती की गतिविधियों को देखने की उत्सुकता के कारण देवता की प्रतिमा के पीछे छिप जाते हैं। मंदिरावती भी अपने जीवन से इतनी निराश हो चुकी थी कि वह ईश्वर से अगले जन्म में यशस्कर के पुत्र की कामना करती है एवं इस जन्म को समाप्त करने के लिए आत्महत्या करने को तैयार हो जाती है। इसी बीच छिपे हुये पथिक तथा यशस्कर का पुत्र प्रकट होकर मंदिरावती को बचा लेते हैं। मंदिरावती तथा यशस्कर का पुत्र मंदिर के पिछले द्वार से निकल जाते हैं। यशस्कर पुत्र की सहायता हेतु पथिक नवयुवक मंदिरावती का स्पर्श धारण करके, उसके घर इसलिए पहुँच जाता है कि घर न पहुँचने पर मंदिरावती के पिता खोज प्रारम्भ न करें। सौभाग्यवश, मंदिरावती के वैधायी पथिक नवयुवक की प्रेयसी, मंदिरावती की सखी निकली। वह उसे

मदिरावती समझती है तथा अपनी प्रेमकथा बता बैठती है । जिसमें वह उसी पुरुष का उल्लेख करती है जिसने उसे हाथी से बचाया था । इस प्रकार दोनों का प्रेम अभिव्यक्त हो जाता है । तथा वह व्यक्ति भी अपना परिचय बता देता है । ये दोनों भी गुप्तद्वार से निकल जाते हैं । तथा विवाह कर लेते हैं ।<sup>1</sup>

कथासरित्सागर की उपर्युक्त कथा की मालतीमाधव से तुलना की जाये तो अनेक बिन्दु ऐसे प्राप्त होते हैं जिनके आधार पर भवभूति कथासरित्सागर के ऋणी प्रतीत होते हैं । जो इस प्रकार है ।

कथासरित्सागर में माला भेजने का प्रसंग बहुत ही रोचक है । इसमें मदिरावती अपनी परिचायिका के माध्यम से यशस्कर पुत्र के पास मालतीपुष्पों का एक हार भिजवाती है, जिसे उसके पुण्य निवेदन का संकेत माना जाता है । भवभूति ने उक्त घटना को ग्रहण तो किया है, परन्तु उसमें उच्च कोटि की नाटकीयता का समावेश कर दिया है। मालती की परिचायिका सीधे-सीधे मालती का उपहार देकर पुण्य निवेदन नहीं करती प्रत्युत वह मालती के लिए माधव से बकुल पुष्पों का हार माँग कर पुण्य निवेदन का संयमित मार्ग अपनाती है ।<sup>2</sup> भवभूति ने इस प्रसंग को नाटक में अभिनय के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, उन्होंने इस कथा को माधव द्वारा उसके एक मित्र को सुनवाकर समय की मितव्ययिता की है ।

1. कथासरित्सागर - 13.1.167-193-200, 214

2. "महाभाग सुश्रिलष्टगुणतया रमणीय एष वः सुमनसां संनिवेशः ।  
कुतुहलिनी च नो भर्तृदारिकौस्मिन्वर्तते । तस्या अभिनवो विचित्रः  
कुसुमेषु व्यापारः तद्भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य फलतु निर्माणरमणीयता  
विधातुः समासादयतु सरस एष भर्तृदारिकायाः कण्ठावलम्बन  
महार्घताम् ।" - मालतीमाधव, 1.पृ 64-65

भवभूति द्वारा नाटक में की गयी उक्त प्रस्तुति अभिनय की दृष्टि से औचित्यपूर्ण कही जानी चाहिए ।

कथासरित्सागर में यशस्कर का पथिक मित्र मदिरावती का रूप धारण करके उसके घर पहुँचता है तथा मालतीमाधव में माधव का मित्र, मकरन्द मालती का रूप धारण करके उसके घर पहुँचता है । दोनों ही घटनाओं में युवती के घरवालों को उसकी उपस्थिति का मिथ्या ग्रहण कराया जाता है । जो कथानक की घटनाओं को स्पष्ट करने में सहायक होता है ।

कथासरित्सागर में मदिरावती की उसके प्रेमी यशस्कर पुत्र से कामदेव के मन्दिर में अकस्मात् भेंट होती है, तथा दोनों मन्दिर से पलायन कर जाते हैं । भवभूति को इस प्रकार का पलायन अच्छा नहीं लगा होगा । अपने नायक-नायिका को अधिक गौरव प्रदान करने के लिए उन्होंने अधिक सुन्दर प्रस्तुति की सर्जना की है । वे मालती तथा माधव का नगर देवता के मन्दिर से प्रस्थान तो कराते हैं परन्तु वह उसके परिणामों से उन्हें काफी सीमा तक बचाने का प्रयास करते हैं । क्योंकि उनके द्वारा किये गये कृत्यों के लिए कामन्दकी उत्तरदायी है ।

इस नाटक में समस्त घटनाओं का सूत्र कामन्दकी के हाथों में है। कामन्दकी का एकमात्र उद्देश्य मालती और माधव का विवाह कराना है। कामन्दकी मालती और माधव का विवाह इसलिए कराना चाहती है क्योंकि वह उन दोनों के पिता क्रमशः भूरिवसु तथा देवरात द्वारा एक दूसरे की सन्तान का विवाह करने की प्रतिज्ञा की साक्षिणी थी ।<sup>1</sup> भूरिवसु तथा देवरात कामन्दकी के सतीर्थ थे । अतः उन दोनों के किसी भी कार्य का

कामन्दकी के लिए एक विशेष अर्थ था, प्रतिज्ञा तो एक बड़ी बात थी ।

कथासरित्सागर में मदिरावती की सखी के प्राणों की हाथी से रक्षा करके उसके मदिरावती की सखी के । हृदय में उस वीर पुरुष के प्रति अनुराग उत्पन्न कराना था, जिसने उसकी रक्षा की थी क्योंकि इस घटना के माध्यम से उस पुरुष की वीरता, निभीकता तथा परोपकार करने में प्राणों तक की उपेक्षा व्यक्त होती है । भवभूति ने हाथी के स्थान पर सिंह का प्रयोग इसलिए किया होगा कि सिंह से लड़ने के लिए अपेक्षाकृत अधिक शौर्य की आवश्यकता होती है । इस दृष्टि से यह परिवर्तन बहुत सराहनीय है ।

मदिरावती तथा यशस्कर पुत्र का विवाह एक ब्राह्मण के घर पर सम्पन्न होता है । भवभूति ने भी मालती तथा माधव का विवाह कामन्दकी के घर पर सम्पन्न कराकर इस महत्वपूर्ण घटना को यथावत् ग्रहण कर लिया है ।

मदिरावती की उपर्युक्त कथा के अतिरिक्त कथासरित्सागर में मालतीमाधव की एक घटना से मिलती हुयी एक अन्य कथा भी प्राप्त होती है जो इस प्रकार है ।

"विदूषक नामक एक ब्राह्मण युवक शक्तिपरीक्षा के लिए अर्द्ध-रात्रि के समय श्मशान में जाता है ।<sup>1</sup> वहाँ वह कात्यायनी के मंदिर में एक दिव्य शक्ति सम्पन्न कापालिक को राजा आदित्यसेन की राजकुमारी की बलि चढ़ाते हुये देखता है । राजकुमारी को बचाने के लिए वह अपनी तलवार से कापालिक को मार डालता है ।<sup>2</sup> राजा को

1. कथासरित्सागर - 3.4, 145-147 ।

2. कथासरित्सागर - 3.4, 170-172, 174 ।

जब विदूषक के इस वीरतापूर्ण कार्य का पता लगता है तो वह प्रसन्न होकर विदूषक के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर देता है ।<sup>1</sup>

ठीक ऐसी ही कथा मालतीमाधव में भी प्राप्त होती है । लेकिन भवभूति के वर्णन में नाटकीयता यह है कि उन्होंने कन्या मालती को माधव की प्रेमिका के रूप में चित्रित किया है जो अपने प्राणों की रक्षा के लिए स्वयं माधव को पुकारती है ।<sup>2</sup> मालतीमाधव में उक्त वर्णन अधिक भावात्मक हो गया है । प्रकरण में नारियका के प्राणों का संकट में पड़ना दर्शकों की जिज्ञासा को बढ़ाने का एक अच्छा अवसर था । भवभूति ने इसका भरपूर लाभ उठाया है ।

उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भवभूति मालतीमाधव के कथानक के लिए कथासरित्सागर के ऋणी हैं ।

भवभूति ने उपर्युक्त कथाओं को अपने प्रकरण की विषयवस्तु बनाया है । उनके कई अन्य वर्णनों पर पूर्ववर्ती लेखकों का प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है । जैसे माधव द्वारा मेघों से मालती का समाचार पूछना, मेघदूत में मेघों द्वारा सन्देश भेजने के समान है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भवभूति ने विस्तृत वाङ्मय में से कुछ घटनाओं का चयन करके उन्हें उक्त रूपक में प्रस्तुत किया है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि भवभूति में नाट्य निर्माण की कुशलता नहीं थी वास्तव में कवि की कुशलता तो विभिन्न स्रोतों का अपने अनुसार प्रयोग करने तथा विभिन्न

1. कथासरित्सागर - 3, 4. 202-203

2. "मालती- हादेव माधव, परलोकगतोऽपि युष्माभिः स्मर्तव्योऽयं जनः । न खलु स उपरतो यस्य वल्लभः स्मरति ।" मालतीमाधव, 5. पृ 237  
"परिश्रायतां महाभागः" वही, पृ 238

तत्वों के द्वारा नवीन कलाकृति का निर्माण करने में है ।

इस प्रस्तुति में उन्होंने नाट्यशास्त्रीय नियमों का भी विशेष ध्यान रखा है । जिनका विवेचन इस प्रकार है ।

### नाट्यशास्त्र के आधार पर कथानक संरचना का मूल्यांकन

मालतीमाधव प्रकरण एक शृंगार रस प्रधान प्रकरण है । इसमें मालती तथा माधव का वृत्तान्त आधिकारिक कथावस्तु है तथा वे दोनों ही प्रकरण के मुख्य पात्र हैं । मकरन्द तथा मदयन्तिका की कहानी प्रासंगिक कथावस्तु है । ये दोनों प्रस्तुत रूपक के गौण पात्र हैं । भवभूति ने मकरन्द को माधव के घनिष्ठ मित्र के रूप में और मदयन्तिका को नन्दन की बहिन तथा मालती की सखी के रूप में चित्रित किया है । इन सम्बन्धों से प्रासंगिक कथावस्तु को आधिकारिक कथावस्तु के साथ गूँथने में सहयोग मिलता है ।

मालतीमाधव में अप्रकृतियों, कायाविस्थायों तथा सन्धियों का सुन्दर सामंजस्य किया गया है ।

रूपक के प्रथम तथा द्वितीय अंक में मुखसन्धि का विस्तार है । मालती एवं माधव के पिता क्रमशः भूरिवसु एवं देवरात का अपने विद्यार्थी जीवन में कामन्दकी के सामने की गयी प्रतिज्ञा <sup>1</sup> ही बीज है । जिसका संकेत भवभूति ने कामन्दकी के शब्दों में कर दिया है । <sup>2</sup> इन शब्दों में ही सम्पूर्ण कथानक का बीज निहित है । यही बीज विकसित होकर विभिन्न

1. "अवश्यमावाभ्यामपत्यसम्बन्धः कर्त्तव्य इति ।" मालतीमाधव 1.पृ. 22

2. कामन्दकी - "अपि नाम कल्याणिनोभूरिवसुदेवरातापत्ययोरनयो-  
मालतीमाधवयोरभिमतं पाणिग्रहः मंगलं स्यात् ।" वही 1.पृ. 19



दिशाओं में कथानक की शाखा, प्रशाखाओं का विस्तार करता है । कामन्दकी द्वारा मालती तथा माधव के विवाह की चिन्ता "आरम्भ" नामक काया-वस्था है । जिसका निर्देश कामन्दकी के इन शब्दों में हुआ है । "मेरे प्राणोंसे अथवा तपस्याओं से मित्र का अभीष्ट कार्य सम्पन्न हो जाये तो यह एक श्रेष्ठ कार्य होगा ।"।

अतः बीज नामक अर्थप्रकृति तथा "आरम्भ" नामक कायावस्था का योग होने के कारण यहाँ "मुखसन्धि" है । इस सन्धि की मुख्य घटनायें हैं :- माधव द्वारा मालती का प्रथम दर्शन करना, मालती की दासी लवंगिका के द्वारा माधव से बकुलमाला माँगना, मालती द्वारा माधव का चित्र बनाना मकरन्द के सामने माधव का मालती के प्रति प्रेम स्वीकार करना, तथा मालती के हृदय में माधव के प्रति प्रेम बढ़ाने के लिए कामन्दकी का कुशलता-पूर्वक प्रयत्न करना ।

मालतीमाधव के तीसरे तथा चौथे अंक में "प्रतिमुख" सन्धि पायी जाती है । इन अंकों में मालती एवं माधव के प्रेमस्पर्शी बीज का अंकुर पनपता हुआ दिखाई देता है । राजा का प्रिय पात्र नन्दन मालती से विवाह करने का इच्छुक है, उसकी इस इच्छा में राजा की सहमति भी सम्मिलित है । जब मालती के पिता भूरिवसु को यह समाचार विदित होता है तो वह एक असमंजस की स्थिति में पड़ जाते हैं। और अन्ततः मालती के साथ नन्दन के विवाह की अनुमति दे देते हैं । इसी बीच मालती की सखी मद-यन्तिका पर एक व्याघ्र आक्रमण कर देता है जिसकी रक्षा माधव का मित्र मकरन्द करता है । इन अवान्तर कथाओं से मूल कथा विच्छिन्न हो जाती

1. कामन्दकी- "प्राणैस्तपोभिरधर्माभिमतं मदीयैः कृत्यं घटेत सुहृदो  
यदि तत्कृतं स्यात् ॥" मालतीमाधव 1.10

है। जिसका सूत्रपात कुसुमाकर उद्यान में माधव द्वारा मालती के दर्शन से होता है। यहीं से मूल कथानक पुनः विकसित होने लगता है। नाट्य-शास्त्रीय दृष्टि से यह स्थिति बिन्दु कहलाती है। कामन्दकी तथा मालती का वातालाप, । जिसे छिपकर माधव सुन रहा था । कामन्दकी द्वारा उन दोनों को समीप लाने का "प्रयत्न" है। कामन्दकी के इस कुशलतापूर्ण प्रयत्न के माध्यम से भवभूति माधव के प्रति मालती के हृदय में स्थित प्रेम को अभिव्यक्त कराते हैं। यह प्रयत्न कामन्दकी की कुशलतापूर्ण नीतियों में से एक है। जिसके माध्यम से नायक तथा नायिका का हृदयस्थ प्रेम स्वयं उन्हीं के शब्दों में व्यक्त हो जाता है।

कामन्दकी को यह समाचार पता लगता है कि मालती का विवाह नन्दन के साथ निश्चित हो गया है तो उसका प्रयत्न चरमसीमा पर पहुँच जाता है। वह अपने प्राणों का मूल्य देकर भी मालती और माधव का विवाह कराने का प्रयत्न करती है।<sup>1</sup>

अतः "बिन्दु" नामक अर्थप्रकृति एवं "प्रयत्न" नामक कार्यावस्था का योग होने के कारण यहाँ "प्रतिमुख सन्धि" का विस्तार है। इस सन्धि की मुख्य घटनायें इस प्रकार हैं :-

- 
1. कामन्दकी - "मा वां सप्तैवपि नाम तद्भूत्यापं  
यदस्यां त्वयि वा विशङ्क्यम् ।  
तत्सर्वथा संगमनाय यत्नः  
प्राणव्ययेनापि मया विधेयः ॥"

मालती एवं कामन्दकी का वातालाप, लवंगिका द्वारा मालती की दशा का वर्णन, माधव और मालती का मिलन, मालती की सखी मदयन्तिका पर व्याघ्र का आक्रमण तथा मकरन्द द्वारा उसकी रक्षा, माधव का मूर्छित होना, तथा मालती के स्पर्श से चेतना प्राप्त करना, नन्दन के साथ मालती का विवाह हो जाने पर मालती तथा माधव का निराश होना एवं कामन्दकी द्वारा उन दोनों को आश्चस्त करना ।

प्रस्तुत प्रकरण के पाँचवें, छठे तथा सातवें अंक में "गर्भ सन्धि" का विस्तार है। इन अंकों में माधव एवं मालती के प्रेमरूपी बीज का अन्वेषण व्यक्त होता है। नन्दन के साथ मालती का विवाह सम्पन्न होने पर नायक के लिए फल प्राप्त करने की आशा लगभग समाप्त होती हुयी प्रतीत होती है।<sup>1</sup> किन्तु बाद में कामन्दकी द्वारा माधव को मालती साँपने<sup>2</sup> में फल प्राप्ति की आशा बंध जाती है। इस प्रकार की अवस्था "प्राप्त्याशा" कहलाती है। रूपक में मकरन्द तथा मदयन्तिका की प्रेम कथा "पताका" है जो एक बार आरम्भ होकर मूलकथा के साथ अन्त तक चलती है। अतः "प्राप्त्याशा" नामक कायाविस्था एवं "पताका" नामक अर्थप्रकृति का योग होने के कारण यहाँ गर्भ सन्धि है।

प्राप्त्याशा नामक कायाविस्था में फलप्राप्ति की आशा तो रहती है परन्तु विधनबाधाओं से घिरी रहती है। इसमें "उपाय" और "अपाय"

1. मालतीमाधव 6.2

2. कामन्दकी - "इयमशेषतामन्तमस्त कोत्तंसपराग रञ्जित चरणाङ्गुलेरमा-  
त्यभूरिवसोरैकमपत्यरत्नं मालती भगवता सदृशसंयोगरसि-  
केन वेधता मन्मयेन मया च तुभ्यं दीयते ।"

दोनों का सम्मिश्रण रहता है । मालती के साथ विवाह के सम्बन्ध में माधव के निराश हो जाने पर श्मशान में मांस विक्रय करने में "अपाय" है तथा कराला के मंदिर में मालती की बलि देने वाले अघोरघण्टक को माधव द्वारा मारकर मालती की रक्षा करने में "उपाय" है । यहाँ "प्राप्त्याशा" नामक कायाविस्था है । जब मालती की बलि दी जाने वाली है, तो कथानक का चरमबिन्दु प्रस्तुत होता है तथा दर्शक मांस रोककर मालती के भविष्य के प्रति जिज्ञासु हो जाते हैं । प्रस्तुत स्थल के उस भाग में "पताका" है जहाँ मकरन्द, मालती एवं नन्दन के विवाह में अपने आपको मालती के स्थल में प्रस्तुत करता है जो कामन्दकी के इन शब्दों से प्रारम्भ होता है कि "वत्स मकरन्द ! इसी विवाह के प्रयोजन से मालती का वेश धारण करके दूसरे के द्वारा न पहचानने योग्य होकर अपने विवाह के लिए तैयार हो जाओ ।" और आठवें अंक तक चलता रहता है ।

इस सन्धि की मुख्य घटनायें इस प्रकार हैं:- श्मशान में माधव का नरमांस बेचना, कराला मंदिर का दृश्य, माधव के हाथों अघोरघण्टक की मृत्यु, मालती और नन्दन का विवाह, मकरन्द एवं मदयन्तिका का सहपलायन ।

स्थल के आठवें तथा नवें अंक में विमर्श सन्धि है । "विमर्श सन्धि" में "प्रकरी" नामक अर्थप्रकृति और "नियताप्ति" नामक कायाविस्था का योग होता है । आठवें अंक के प्रारम्भ में मकरन्द और मदयन्तिका नन्दन के भवन से पलायन करते हैं तो मार्ग में नगर रक्षक इन्हें रोकने का

---

1. "कामन्दकी - वत्स मकरन्द ! त्वमनेनैव वैवाहिकेन मालतीनेपथ्येन प्रसाधितः परिणयथात्मानम् ।"

प्रयत्न करते हैं । मकरन्द उनसे युद्ध करता है तथा उसको सहायता के लिए माधव भी पहुँच जाता है । राजा, जो इस युद्ध दृश्य को देख रहे थे, दोनों नवयुवकों की वीरता से प्रसन्न होकर विवाह की स्वीकृति दे देते हैं । अतः दोनों युवकों का नगर-रक्षकों के साथ संघर्ष "प्रकरी" है जो बीच में एकट होता है और शीघ्र ही समाप्त हो जाता है ।

कामन्दकी द्वारा मालती एवं माधव को विवाह के लिए भेजे जाने पर भी उस समय विघ्न उपस्थित हो जाता है, जब माधव युद्ध में मकरन्द की सहायता के लिए चला जाता है, और इसी समय अवसर पाकर कपालकुण्डला, गुरु का वध होने के कारण माधव से बदला लेने के लिए मालती का अपहरण कर लेती है । कुछ समय पश्चात् ही सौदामिनी, मालती के अभिज्ञान के रूप में बकुलमाला लेकर आती है तथा उसकी कुशलता का समाचार देती है । स्वयं की यह अवस्था "नियताप्ति" कहलाती है ।

इस सन्धि की मुख्य घटनायें इस प्रकार हैं -

मकरन्द का नगररक्षकों के साथ युद्ध, माधव का अपने मित्र की सहायता के लिए जाना, कपालकुण्डला द्वारा मालती का अपहरण, माधव एवं मकरन्द को क्रमशः मालती एवं मदयन्तिका के साथ विवाह की राजा से स्वीकृति मिलना तथा मालती को न पाकर माधव एवं मकरन्द का निराश होना ।

मालतीमाधव के दशम अंक में "निर्वहण सन्धि" व्याप्त है । सारे विघ्न बाधाओं के दूर हो जाने पर राजा की स्वीकृति से माधव एवं मालती तथा मकरन्द एवं मदयन्तिका का विवाह हो जाना "कार्य" नामक अर्थप्रकृति है । भूरिवसु और देवरात की, अपनी संतानों को वैवाहिक सम्बन्ध में बांधने के प्रति की गयी प्रतिज्ञा की पूर्ति ही "फलागम" नामक कार्यावस्था है । इस सन्धि की मुख्य घटनायें इस प्रकार हैं :-

मालती के गायब हो जाने पर, भूरिवसु का आत्महत्या के

लिए प्रयत्न करना, माधव का आना, मालती की कुशलता का समाचार लेकर सौदामिनी का आना तथा माधव एवं मालती तथा मकरन्द और मदयन्तिका के विवाह की राजा द्वारा स्वीकृति देना ।

प्रस्तुत रूपक के, रंगमञ्च पर अभिनीत न करनेयोग्य कथाशों की सूचना देने के लिए भवभूति ने "अर्थोपक्षेपकों" का भी प्रयोग किया है । इस प्रकरण में शुद्ध एवं मिश्र दोनों विष्कम्भकों का प्रयोग हुआ है । इसके अतिरिक्त अर्थोपक्षेपक के दूसरे प्रकार "प्रवेशक" का प्रयोग भवभूति के केवल इसी रूपक में देखा जा सकता है । रूपक के दूसरे, तीसरे, सातवें तथा आठवें अंक के प्रारम्भ में प्रवेशक का प्रयोग किया गया है ।

मालतीमाधव में "चूलिका" का प्रयोग भी देखा जा सकता है जैसे तीसरे अंक के प्रारम्भ में एक व्याघ्र के पिंजड़े से छूटने तथा मदयन्तिका पर आक्रमण करने की सूचना दर्शकों को नेपथ्य से दी जाती है ।<sup>1</sup> इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी चूलिका का तथा अन्य अर्थोपक्षेपकों का भी भवभूति ने प्रशंसनीय प्रयोग किया है ।

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर यह तथ्य सहज ही सुव्यक्त हो जाता है कि मालतीमाधव प्रकरण का उपजीव्य कोई एक ग्रन्थ नहीं है । इसमें भवभूति ने कई कथानकों का संग्रह करके अपनी व्यक्तिगत शैली द्वारा नवीन स्वरूप प्रदान किया है । इसमें प्रमुख कथानक तो गुणाद्य की बृहत्कथा में प्राप्त होने वाला यशस्कर पुत्र एवं मदिरावती का वृत्तान्त है । भवभूति ने इसमें स्वेच्छा से परिवर्तन करके कथानक को आकर्षक एवं नाटकीय बनाने के जो नवीन प्रयोग किये हैं उनमें से कुछ तो आशातीत रूप से सफल हुए हैं परन्तु कुछ में उत्कृष्टता नहीं आ पायी है । प्रथम कोटि के उदाहरण में भवभूति ने प्रतिनायक की वीरता को अधिक उभारने के लिए व्याघ्र

से उसका द्रन्द युद्ध चित्रित किया है जबकि बृहत्कथा में हाथी के साथ संघर्ष उतना प्रभावोत्पादक नहीं है । भवभूति के असफल प्रयोगों में आकाश में माधव का अघोरघण्ट के साथ युद्ध प्रदर्शित करना कहा जा सकता है, क्योंकि तत्कालीन समय में आकाश में युद्ध का अभिनय दिखाना सम्भव कार्य नहीं था ।

भवभूति ने रंगमञ्च पर नटों को स्वयं के पात्र का वेष धारण कराया है । उन्होंने इस विधि को उत्तररामचरित में भी प्रदर्शित किया है । इससे पात्र परिचय में एक नवीन शैली का शुभारम्भ हुआ है ।

भवभूति के नाटकों का एक नकारात्मक पक्ष यह है कि उन्होंने पात्रों के बड़े-बड़े वातालापों की रंगमञ्च पर प्रस्तुति के लिए सर्जना की गयी है, परन्तु भवभूति ने मंत्रियों की प्रतिज्ञा को कामन्दकी के माध्यम से संक्षेप में कहलावर नाटक में मितव्ययिता की है । यह एक प्रशंसनीय कार्य है ।

महावीरचरित के समान इस स्वयं में भी घटना का सूत्र किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में रहता है तथा भविष्य में होने वाली घटनाओं की एक योजना बनायी जाती है । जिसके फलस्वरूप घटनायें यन्त्रचलित सी प्रकट होती रहती हैं । इससे श्रोताओं की जिज्ञासा कम हो जाती है । यदि घटना विकसित होती हुयी दिखायी जाती है तो अधिक प्रभावोत्पादक होता ।

संक्षेप में यह कह सकते हैं कि भवभूति ने प्रस्तुत स्वयं की रचना वर्णनात्मक शैली में करके अभिनेयता को गौण बना दिया है ।

उत्तररामचरित में कथानक संरचना



### अध्याय - 4

#### उत्तररामचरित में कथानक संरचना

उत्तररामचरित भवभूति का अन्तिम एवं सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है। इसी स्वरूप की विशेषता के आधार पर ही भवभूति की कालिदास से तुलना की जाती है। उत्तररामचरित के सर्वातिशायी होने के कारण ही कहा जाता है "उत्तररामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते"। इस उक्ति के भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण किये गये हैं। प्रथम मत के अनुसार उत्तररामचरित में भवभूति ने अन्य दो स्वरूपों की अपेक्षा उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। दूसरा मत यह है कि स्वरूपों में अभिज्ञान - शकुन्तला ने जो सर्वोच्च स्थान प्राप्त करके "तत्र रम्याः शकुन्तला," की उक्ति को प्रसारित कर दिया था, उसे उत्तररामचरित ने चुनौती दी, तथा विद्वत् समाज एकबार पुनः यह विचार करने के लिए विवश हुआ कि शकुन्तला अथवा उत्तररामचरित में किसे अधिक सुन्दर रचना माना जाये। प्रस्तुत अध्याय में दोनों स्वरूपों की तुलना करना प्रसंग के अनुकूल नहीं है। उपर्युक्त चर्चा का एकमात्र उद्देश्य यह है कि उत्तररामचरित की रचना करके भवभूति ने काव्यजगत में एक विशिष्ट कार्य किया था। उनकी इस विशिष्ट रचना के कारण ही काव्यजगत में लब्ध प्रतिष्ठ ग्रन्थों की सर्वातिशायिता पर पुनर्विचार करने के लिए आलोचक बाध्य हुये थे।

उत्तररामचरित स्वरूप के नाम से ही इसकी कथावस्तु का आभास हो जाता है। महावीरचरित में भवभूति ने श्रीराम के जीवन के पूर्वार्द्ध अर्थात् उनके विवाह से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा को वर्णित किया है। उत्तररामचरित के लिए भवभूति ने किसी कथानक का आश्रय नहीं लिया, प्रत्युत उन्होंने महावीरचरित के कथानक को ही आगे बढ़ाया है। प्रस्तुत स्वरूप में भवभूति ने नये कथानक को खोजने में श्रम नहीं लगाया अपितु उन्होंने

प्राचीन तथा प्रसिद्ध श्रीराम के ही चरित्र को अपनी विशिष्ट शैली में प्रस्तुत करके अपनी प्रतिभा का सदुपयोग किया है। अत्यन्त प्रसिद्ध कथा-वस्तु को रचना का आधार बनाने में यह सुविधा रहती है कि उस पर पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका होता है तथा अन्य व्यक्तियों ने जो उसमें त्रुटियाँ की हैं उनसे भी बचा जा सकता है। भवभूति ने महावीरचरित में की गयी त्रुटियों से भी शिक्षा ग्रहण की होगी तथा श्रीराम के चरित्र की प्रस्तुति के विषय में गहन चिन्तन किया होगा ।

उपर्युक्त चर्चा के बाद यह कहना अनावश्यक है कि उत्तररामचरित का मुख्य उपजीव्य वाल्मीकि रामायण ही है। इसमें रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित सीता परित्याग की कथा को वर्णित किया गया है। भवभूति करुण को सर्वप्रथम रस मानते हैं। करुणरस वर्णन का अवसर उत्तरकाण्ड में विस्तारपूर्वक प्राप्त हुआ है। उत्तररामचरित के उपजीव्य रामायण से भवभूति ने न केवल कथा ली है अपूर्ति कतिपय श्लोकों को शब्दशः ग्रहण कर लिया है।<sup>1</sup> सम्भवतः इन श्लोकों में भवभूति को बहुत अधिक रस-प्रवणता एवं भावप्रेषलता लगी होगी । अतः उन्होंने इन श्लोकों को यथावत् ग्रहण कर लिया होगा ।

कुछ विद्वान पद्मपुराण को भी उत्तररामचरित का उपजीव्य मानते हैं । उनके अनुसार पद्मपुराण में कुछ उद्धरण प्राप्त होते हैं<sup>2</sup> जैसे रामायण में राम एवं सीता का पुनर्मिलन नहीं कराया गया है । जबकि पद्मपुराण तथा उत्तररामचरित में राम को सीता की प्राप्ति कराकर सुखमय अन्त किया है। उत्तररामचरित में पातालखण्ड की कथा से कुछ भेद

1. उत्तररामचरित-2.5, वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड-1.15,<sup>3</sup>

उत्तररामचरित- 6.31, 32, वाल्मीकि रामायण, 70.26-27

2. पद्मपुराण - 4. प्रथम 68 अध्याय

प्राप्त होते हैं जैसे -

1. पद्मपुराण के अनुसार भरत का पुत्र पुष्कल अश्वमेध यज्ञ के घोड़े का रक्षक है जबकि उत्तररामचरित में लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकैतु यज्ञ के घोड़े का रक्षक है ।
2. पद्मपुराण में वाल्मीकि ने कुश-लव को अस्त्रविद्या सिखाई है जबकि उत्तररामचरित के अनुसार इन दोनों को जन्म से ही दिव्यास्त्रों का स्वतः प्रकाश हुआ था ।
3. पद्मपुराण के अनुसार युद्ध में पहले लव की विजय होती है बाद में बन्दी बना लिया जाता है तथा उसका ज्येष्ठ भाई कुश युद्ध क्षेत्र में आकर सारी सेना को पराजित कर देता है । इसी बीच सीता मध्य में आकर अश्व को बंधन से मुक्त करा देती है तथा अश्वमेध यज्ञ पूरा हो जाता है । जब राम के पास इन दोनों कुमारों की वीरता का समाचार पहुँचता है तो वह अश्वमेध यज्ञ में उपस्थित हुये ऋषि वाल्मीकि से इन दोनों बालकों का वास्तविक वृत्तान्त जानते हैं । तदन्तर वहाँ सीता बुलायी जाती हैं एवं कुश तथा लव रामायण की कथा को गाकर सुनाते हैं । राम, वाल्मीकि के आदेश से सीता को ग्रहण करते हैं एवं अनेक वर्षों तक राज्य करते हैं । उत्तररामचरित में उपर्युक्त घटनाओं को संक्षेप में व्यक्त किया गया है । वहाँ राम स्वयं युद्ध क्षेत्र में पहुँच जाते हैं और प्रत्यक्ष रूप से उनका कुश-लव से साक्षात्कार होता है ।

वस्तुतः पुराणों का रचनाकाल अज्ञात है एवं समय-समय पर उनमें अनेक प्रक्षेप होते रहे हैं । इस आधार पर इदमित्यम् रूप से यह कहना सम्भव नहीं है कि कौन सी घटना मूल पुराण की है अथवा कौन सी प्रक्षिप्त है । इस प्रकार यद्यपि स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि भवभूति ने वस्तुसंरचना में पद्मपुराण से भी सहायता ली होगी अथवा नहीं । परन्तु

हम घटनाओं की प्रस्तुति की उत्कृष्टता के आधार पर पद्मपुराण एवं उत्तररामचरित का पौवापर्य निश्चित कर सकते हैं । सामान्यतः किसी भी रचना में न्यूनता से उत्कृष्टता तो देखी जाती है परन्तु उत्कृष्टता से न्यूनता देखने को नहीं मिलती । कई दृष्टियों से उत्तररामचरित की प्रस्तुति पद्मपुराण से श्रेष्ठ है । अतः भवभूति पद्मपुराण से अवश्य प्रभावित रहे होंगे ।

भवभूति की कथावस्तु संरचना पद्मपुराण से तो प्रभावित रही होगी परन्तु उसका मुख्य आधार रामायण ही होना चाहिए । रामायण की कथा में भवभूति द्वारा किये गये परिवर्तनों तथा इन परिवर्तनों में निहित कारण इस प्रकार माने जा सकते हैं ।

#### सीता परित्याग सम्बन्धी विषयवस्तु

भवभूति ने उत्तररामचरित में सीता परित्याग को रामायण से भिन्न रूप में चित्रित किया है। रामायण में सीता परित्याग के समय वसिष्ठ और दशरथ की रानियों के अयोध्या में उपस्थित होने या न होने के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। भवभूति ने सीता परित्याग का निर्णय लेने से बहुत पहले प्रस्तावना में ही दर्शकों को यह सूचित कर दिया है कि "वसिष्ठ तथा रामचन्द्र जी की मातायें यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए जामाता श्रृङ्ग के आश्रम में गयीं हैं।" इन वृद्धजनों को अयोध्या में अनुपस्थित दिखाने का कवि का उद्देश्य सीता परित्याग के दोष से मुक्त करना है।

1. नट "वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः ।

अरुण्यतीं पुरस्कृत्य यज्ञं जामातुराश्रमम् ॥"

उत्तररामचरित 1.3

भवभूति ने अष्टावक्र नामक शृषि से अरून्धती, शांता एवं वसिष्ठ का संदेश भिजवाकर एक महत्त्वपूर्ण नाटकीय घटना को स्थान दिया है। अरून्धती एवं शांता का संदेश है कि "सीता के किसी भी दोहद को अविलम्ब पूर्ण किया जाय।" <sup>1</sup> एवं वसिष्ठ का संदेश है कि "राम बालक हैं तथा राज्य भी नवीन है। अतः प्रजा का अनुरञ्जन करने के लिए एक राजा का जो परम कर्त्तव्य है उसे पूरा करना चाहिए।" <sup>2</sup> रामायण में इस प्रकार के किसी संदेश का कोई उल्लेख नहीं मिलता, वस्तुतः वहाँ इसके लिए कोई अवसर प्राप्त नहीं है क्योंकि वृद्धजन तो अयोध्या में ही उपस्थित थे, वे संदेश कहाँ से भिजवाते। वसिष्ठ के संदेश को सुनकर राम राज्य के कल्याण हेतु अपना सर्वस्व बलिदान करने तथा सीता तक का त्याग करने की प्रतिज्ञा करते हैं। <sup>3</sup> ऐसा लगता है कि उन्होंने वसिष्ठ के संदेश अथवा आदेश को एक चुनौती समझकर स्वीकार कर लिया। सम्भवतः उन्हें भी यह पता नहीं होगा कि इतनी शीघ्र ही प्रजानुरञ्जन की कठिनतम परीक्षा देनी होगी। राम जैसे महान् राजा के सामने गम्भीर धर्म संकट उत्पन्न हो जाता है। एक ओर तो उनके द्वारा प्रजानुरञ्जन के लिए अभी-अभी की गयी प्रतिज्ञा है तथा दूसरी ओर उनके जीवन की सर्वाधिक प्रिय जानकी हैं। वह यदि सीता परित्याग न भी करें तो किस मुँह से उस प्रतिज्ञा की प्रतिध्वनि को दबा सकते थे। ऐसे गम्भीर समय में राम ने अपने कर्त्तव्य का स्पष्ट रूप से निर्धारण किया तथा अपने व्यक्तिगत जीवन की तुलना में

1. अष्टावक्र - "यः कश्चिद्गमदोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरान्मान-  
यितव्य" इति । उत्तररामचरित 1.पृ 39

2. वही 1.11

3. राम - "स्नेहं, दयां च, सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।  
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

राजा के आदर्श को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा । वस्तुतः प्रस्तुत घटना में भव-भूति ने एक परिपक्व रूपककार की प्रतिभा को प्रदर्शित किया है । यहाँ उन्होंने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी है जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि उनके रूपक का नायक प्रतिज्ञायें ही करना नहीं जानता, उन्हें जीवन में उतारना भी जानता है ।

उपर्युक्त घटना से भवभूति ने राम के चरित को और अधिक उदात्तता प्रदान की है । वसिष्ठ की प्रतिज्ञा एक प्रकार से उन्हें, उनके कर्त्तव्य का पुनः एकबार स्मरण कराती है । उपर्युक्त पंक्तियों में उल्लिखित अरुन्धती का संदेश भी कवि का कौशलपूर्ण सन्निवेश है । यहाँ मनो-वैज्ञानिक रूप से देखा जाये तो एक ओर वसिष्ठ तथा दूसरी ओर अरुन्धती तथा शान्ता की स्वभावगत तुलना की गयी है । अरुन्धती एवं शान्ता के हृदयों में स्त्रीसुलभ कसगा है । वह स्त्री के दुःख को भली भाँति जानती हैं और राम को उसका दोहद पूर्ण कराने का संदेश देती है । वसिष्ठ एक कठोर, यथार्थवादी व्यक्ति हैं जिनकी दृष्टि में भावना एवं व्यक्तिगत कार्यों का राज्य के समक्ष कोई मूल्य नहीं है । वह किसी भी परिस्थिति में राम को उनके कर्त्तव्य से विमुख देखना नहीं चाहते । यहाँ अरुन्धती एवं शान्ता को स्त्री स्वभाव का एवं वसिष्ठ को पुरुष स्वभाव का प्रतीक माना जा सकता है । उपर्युक्त चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि भवभूति मानवीय विज्ञान के सफल विश्लेषक हैं ।

भवभूति इसी समय सीता की पुनः वन में घूमने की इच्छा चित्रित करते हैं ।<sup>1</sup> तथा राम को दोहद पूर्ण करने का आदेश पहले ही

1. सीता - "जाने पुनरपि प्रसन्न गम्भीरासुवनराजिषु विहृत्य पवित्र  
निर्मल शिशिरसलिलां भगवतीं भागीरथीमवगाहिष्य इति"

उत्तररामचरित, 1, पृ 85

प्राप्त हो चुका है । इस परिस्थिति में राम को सीता परित्याग का अवसर प्राप्त हो जाता है । उक्त परिस्थिति भवभूति की प्रौढ़ कथानक कला की द्योतक है ।

भवभूति द्वारा सीता के विरुद्ध फैले जनापवाद का संदेश लाने वाले दूत का नाम बदलना भी निरुद्देश्य नहीं हो सकता । रामायण में उक्त दूत का नाम "भद्र" है, जबकि उत्तररामचरित में इसे "दुर्मुख" कहा गया है । सम्भवतः सीता जैसी सती साध्वी श्रेष्ठ स्त्री के बारे में जनापवाद के संदेश को लाने वाले का नाम "भद्र" भवभूति को उचित प्रतीत नहीं हुआ होगा, जबकि "दुर्मुख" इस नाम मात्र से ही यह व्यंजित हो जाता है कि यह किसी बुरे समाचार को लाया होगा । रंगमंच पर दुर्मुख का प्रवेश होते ही दर्शक किसी अज्ञात भय की आशंका का अनुमान कर सकते हैं ।

#### शम्बूक का उपाख्यान =====

वाल्मीकि ने रामायण में शम्बूक नामक शूद्र द्वारा तपस्या करना तथा राम द्वारा उसका वध चित्रित किया है । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के अनुसार शूद्र को तपस्या करने का अधिकार नहीं था । परन्तु रामायण में वाल्मीकि ने इस प्रथा के अनुसार समाज की अव्यवस्था को रोकने के लिए शम्बूक का वध कराया है । रामायण में उक्त कथा इस प्रकार वर्णित है -

"पिता के जीवित रहने पर भी किसी ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु हो जाती है, वह ब्राह्मण इस अकाल मृत्यु का कारण किसी सामाजिक अव्यवस्था को मानता है तथा राजा होने के कारण राम को इस घटना के लिए उत्तरदायी ठहराता है एवं भरे दरबार में उन्हें खरी खोटी सुनाता है ।" <sup>1</sup> राम इस घटना का तथाकथित कारण ज्योतिषियों से ज्ञात करते

1- वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग 73

हैं तथा शैवाल पर्वत पर जाकर शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध करते हैं ।<sup>1</sup> भवभूति ने उत्तररामचरित में इस कथा को नाटकीय शैली में प्रस्तुत करके स्वकर्तार की वस्तु संरचना में मिलने वाली स्वतन्त्रता का पर्याप्त लाभ उठाया है । उन्होंने शम्बूक वृत्तान्त में इस प्रकार परिवर्तन किये हैं । रामायण का शम्बूक शैवाल नामक पर्वत पर तपस्या करता है । जबकि भवभूति का शम्बूक पञ्चवटी में तपस्या कर रहा है ।<sup>2</sup> पञ्चवटी में शम्बूक का तपस्या करने का, भवभूति का एक विशिष्ट उद्देश्य है । वस्तुतः पञ्चवटी राम के अतीत से जुड़ी हुई है । कवि शम्बूक वध के बहाने राम को वहाँ भेजने का सुअवसर प्रस्तुत करता है । यह वही पञ्चवटी है जहाँ राम ने सीता के साथ वनवास के दिन व्यतीत किये थे । इस प्रकार यह पञ्चवटी राम-सीता के अनन्य प्रेम की साक्षिणी है । राम विगत स्मृति-चिह्नों के विषयों को देख-देखकर बहुत अधिक भावुक तथा सीता के विरह से व्याकुल हो उठते हैं । राम असमंजस में पड़ जाते हैं कि "वह अकेले कैसे इस पञ्चवटी को देखें अथवा इसका निरादर करके कैसे चले जायें ?"<sup>3</sup> कछ्ण रस को रसरज मानने वाले कवि के लिए इससे अच्छा अवसर और कहाँ हो सकता था ।

रामायण में राम कुश-लव के जन्म के ठीक बाद शम्बूक का वध करने के लिए आते हैं, परन्तु उत्तररामचरित में राम के पञ्चवटी में जाने के मध्य बारह वर्ष का अन्तराल दिखाया गया है । यदि राम अयोध्या लौटने के कुछ समय बाद ही पुनः पञ्चवटी चले जाते तो उन्हें इस जनस्थान

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग 74, 75, 76, श्लोक 4
2. "वासन्ती - शम्बूको नामाधोमुखी धूमपः शूद्रोऽस्मिन्नेव जनस्थाने तपश्चरति । अपि नाम रामभद्रः पुनरिदं वनमलङ्कुर्यात् ।"

3. उत्तररामचरित, 2.28



के विषय में इतनी भावुकता नहीं होती । बारह वर्ष में उस स्थान का वातावरण भी काफी परिवर्तित हो चुका था, केवल कुछ ही वस्तुयें स्थाई थीं, उन्हीं के आधार पर उस स्थान को पहचाना जा सकता था । यह वातावरण राम-सीता के पारस्परिक सम्बन्धों से समानता रखता है । अर्थात् कवि यह दिखाना चाहता है यद्यपि बाहरी संसार में अनेक परिवर्तन हुये हैं तथापि सीता के प्रति राम का प्रेम पर्वतों के समान स्थाई है ।

रामायण में तपस्या जैसे शुभ कर्म के लिए मृत्युदण्ड जैसा भीषण दण्ड देना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता । भवभूति ने इस घटना को अपनी कल्पना द्वारा नवीनता प्रदान करके राम के चरित को दूषित होने से बचाया है । भवभूति राम से शम्बूक का वध इस प्रकार कराते हैं कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि राम ने शम्बूक पर महान् उपकार किया है, क्योंकि वह राम के आशीर्वाद से स्वर्ग प्राप्त करता है ।<sup>1</sup> अधिक क्या कहा जाये, शम्बूक स्वयं राम के इस कार्य के लिए आभारी है और कृतज्ञता व्यक्त करते हुये कहता है कि "प्रभो ! आपके प्रसाद की ही यह महिमा है ।"<sup>2</sup>

राम के द्वारा शम्बूक का वध कराकर कवि ने राम के वैयक्तिक एवं सार्वजनिक स्वभाव की रोचक तुलना प्रस्तुत की है । तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के अनुसार शूद्र को तपस्या करने पर दण्ड देना राजा होने के नाते राम का कर्त्तव्य है, परन्तु उनका व्यक्तिगत हृदय उसे कभी भी स्वीकार नहीं करता । वह कल्ला से द्रवित तो होते हैं किन्तु अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं हो पाते । उपर्युक्त प्रस्तुति में भवभूति की,

1. "यत्रानन्दाश्च मोदाश्च, यत्र पुण्याश्च सम्पदः ।

वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः ॥"

उत्तररामचरित 2.12

2. "युष्मत्प्रसादादैवैषामहिमा " । वही, 2.पृ 153

यद्यपि तत्कालीन व्यवस्था को न्यायोचित ठहराने में कोई रुचि प्रतीत नहीं होती, परन्तु राम को निर्दोष सिद्ध करने के लिए बद्ध परिकर है । राम व्यवस्था के निर्माता नहीं है, उनका कर्त्तव्य केवल उनका पालन कराना है । इस पालन कराने में व्यक्तिगत रूप से भले ही दुःखी हों, परन्तु कर्त्तव्य पद से कभी विचलित नहीं होते । इस घटना द्वारा राम द्वारा सीता परित्याग की स्थिति को भी समझा जा सकता है । जब राम अपने वैयक्तिक जीवन की सुखशान्ति को कर्त्तव्य के कारण तिलाञ्जलि दे देते हैं, तो शम्बूक वध करने में भी उन्हें विचलित नहीं होना चाहिए था । परन्तु कवि ने राम को शम्बूक का वध करते समय बहुत विचलित चित्रित किया है ।<sup>1</sup> जिससे राम की मनस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है । जो राम इतना भावुक है कि अपरिचित शम्बूक का वध करने में इतना भावविह्वल हो सकता है, वह अपनी प्रिय पत्नी को त्यागने में कितना विचलित हुआ होगा । इस प्रकार भवभूति, पाठकों एवं दर्शकों के सामने, राम को निर्दोष सिद्ध कर देते हैं ।

### कुश-लव की पहचान =====

भवभूति ने रामायण की कथा से एक परिवर्तन कुश-लव की पहचान कराने में किया है । रामायण के अनुसार कुश-लव, वाल्मीकि की आज्ञा से, राम के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर रामायण का पाठ करने के लिए

1. "रे हस्तादक्षिण ! मृतस्य शिषोर्द्विजस्य,

जीवातवे विसृज्य शूद्रमनो कृपाणम् ।

रामस्य बाहुरसि, निर्भर गर्भं खिन्न,

सीताविवासनपटोः कृणा कुतस्ते १ ॥"

उत्तररामचरित, 2.10

जाते हैं।<sup>1</sup> इस महाकाव्य का पाठ करने के दौरान ही राम दोनों कुमारों को पहचान जाते हैं कि ये सीता के ही पुत्र हैं।<sup>2</sup> उत्तररामचरित में भवभूति ने कुश-लव को पहचानने के लिए राम को उस समय उपस्थित किया है, जब शम्बूक का वध करके, दण्डकारण्य से अयोध्या लौटते समय, अपने विमान से, चन्द्रकैतु एवं लव के बीच हुये युद्ध को देखते हैं तथा शीघ्र ही इस अनावश्यक युद्ध को रोकने के लिए नीचे उतरते हैं।<sup>3</sup> वह लव-कुश को देखकर आकर्षित होते हैं और उनका आलिंगन करके असीमित आनन्द का अनुभव करते हैं।<sup>4</sup> जिस प्रकार कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल में दुष्यन्त, सर्वदमन के विभिन्न चिह्नों को देखकर यह सोचता है कि वह उसी का पुत्र है। उसी प्रकार उत्तररामचरित में दोनों कुमारों को पहचानने में राम की भावनाओं को, उनके स्वागत भाषण में उपस्थित कराया गया है। जिन्हें क्रमशः निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

लव-कुश के चाल-ढाल इत्यादि को देखकर राम सोचते हैं कि ये किसी साम्राज्य के अधिकारी हैं।<sup>5</sup> श्यामवर्ण, मजबूत कंधे, प्रसन्नदृष्टि, शान्त स्वर इत्यादि रघुकुल की विशेषतायें दोनों कुमारों में देखी जा सकती हैं।<sup>6</sup> इन बालकों में न केवल रघुकुल की विशेषतायें ही हैं बल्कि सीता

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग 94

2. वही

3. विधाधारी - "नाम कः इदानीमेष ससंभ्रमोत्क्षिप्तकरभ्रमदुत्तरञ्चलो दूरत एव मधुरस्निग्धवचनप्रतिष्ठाद्वयुद्धव्यापार एतयोन्तरे विमानवरमवतारयति ।" उत्तररामचरित, छठे अंक का प्रारम्भ

4. वही, 6.21-22

5. वही, 6.23

6. वही, 6.25

की अनुरूपता भी सहज ही देखी जा सकती है । <sup>1</sup> राम का विचार है कि वाल्मीकि आश्रम के समीप विद्यमान वही वनप्रदेश है जहाँ सीता को परित्याग के समय छोड़ा गया था । सीता परित्याग की अवधि के समान इन कुमारों की आयु भी बारह वर्ष है । दोनों कुमारों के युगल होने से भी यह प्रमाणित होता है कि ये सीता के ही पुत्र हैं क्योंकि उसकी गभावस्था दो सन्तानों के लक्षण वाली थी । उपर्युक्त समस्त विशेषताओं के अतिरिक्त दोनों कुमारों की पहचान का सबसे दृढ़तर प्रमाण यह है कि इन्हें जृम्भकास्त्र स्वतः सिद्ध हैं । क्योंकि प्रथम अंक में चित्रवीथी के समय राम ने सीता की सन्तान को जृम्भकास्त्र प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया था । <sup>2</sup> इस प्रकार क्रमशः उन्हें विश्वास होता जाता है कि वे उन्हीं के पुत्र हैं ।

मनुष्य के हृदय की गहराई का मापन करने के लिए तथा उसकी विचारधाराओं को जानने का सबसे उत्तम साधन स्वगत भाषण ही है । सम्भवतः इसीलिए भवभूति ने राम की उपर्युक्त समस्त भावनाओं को प्रदीप्त करने के लिए इसकी योजना की है । परन्तु उत्तररामचरित में यह इतना लम्बा और कृत्रिम हो गया है कि जिसके कारण कथावस्तु का विकास कुछ अवरूद्ध सा हो गया है । वास्तव में ऐसे विस्तृत प्रसंग नाट्यकला की दृष्टि से अनावश्यक एवं अवांछनीय ही सिद्ध होते हैं ।

#### राम-सीता का पुनर्मिलन =====

रामायण की कथा में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भवभूति ने राम-सीता के पुनर्मिलन में किया है । रामायण की दुःखदकथा को भवभूति

---

1. उत्तररामचरित - 6.26-27 ।

2. राम "सर्वथैद्धदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति" वही 1.पृ 48 ।

ने उत्तररामचरित में सुखद रूप में वर्णित किया है । रामायण के अनुसार यह कथा इस प्रकार है :-

राम के दरबार में सीता वाल्मीकि के साथ आती हैं । वाल्मीकि द्वारा सीता को पवित्र प्रमाणित करने पर राम उन्हें पुनः प्राप्त करना चाहते हैं । लेकिन सीता पृथ्वी माता से प्रार्थना करती हैं कि "यदि उसने राम के अलावा किसी अन्य पुरुष का विचार भी कभी नहीं किया हो तो मुझे अपने आश्रय में ले लो " । पृथ्वी माता सीता की पुकार सुनती हैं इस प्रकार सीता भरे दरबार में पृथ्वी में समा जाती हैं तथा राम हाथ मलते ही रह जाते हैं । <sup>2</sup> अतः महाकाव्य की कथा दुःखान्त है ।

इसके विपरीत भवभूति ने प्रस्तुत रूपक में राम को सीता की पुनः प्राप्ति कराकर, नाटक का सुखद अन्त करके अपनी नाट्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया है ।

रामायण की कथा में इतना बड़ा परिवर्तन करने का प्रथम कारण तो यह है कि भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का अन्त सुखद होना चाहिए । सामाजिक जन आनन्द लेने के लिए अथवा मनोरंजन करने के लिए नाटक देखते अथवा पढ़ते हैं । यदि राम-सीता जैसे परम साध्वी एवं सदा-चारी नायक-नायिका की भी अन्तिम परिणति दुःखद ही हो तो सामान्य जन की तो बात ही क्या है । एक नाटककार होने के नाते भवभूति ने इस नाटकीय नियम का पालन अक्षरशः किया है । अतः उन्होंने महाकाव्य की कथा में यह परिवर्तन करने का साहस पूर्ण प्रयास किया है जिसमें वह सफल

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड सर्ग 97.।4 ।

2. वही, ।

भी हुये हैं । दूसरे कवि ने नायक-नायिका का मिलन कराकर अपने रूपक में आदर्शप्रेम का एक चित्र प्रस्तुत किया है । तथा यह दिखाने का प्रयास किया है कि पवित्र प्रेम की अन्त में विजय होती है । अतः उन्होंने रामायण के दुःखद अन्त को बड़ी सावधानी पूर्वक छोड़ दिया है ।

इस प्रकार भवभूति ने भरतमुनि के आदेश का तो पालन किया ही है । साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया है कि पति-पत्नी का शुद्ध और गम्भीर प्रेम सब कठिनाइयों को पार करके अन्त में सफल होता है ।

इन प्रमुख परिवर्तनों के अतिरिक्त कवि ने एक परिवर्तन यह भी किया है कि रामायण के अनुसार सीता वन प्रदेशों को पुनः देखने की इच्छा तब प्रकट करती है जब राम-सीता में गभावस्था के लक्षणों को देखते हैं और उनकी किसी भी इच्छा को पूछते हैं ।<sup>1</sup> उत्तररामचरित में, भवभूति ने सीता की तपोवनों को पुनः देखने की इच्छा को उत्तेजित करने के लिए चित्रवीथी की योजना की है ।

उपर्युक्त वर्णन में प्रस्तुत रूपक के स्रोत तथा उनमें भवभूति द्वारा किये गये परिवर्तनों एवं उन परिवर्तनों के पीछे सम्भव कारणों को प्रस्तुत किया गया है । अब प्रस्तुत अध्याय में उत्तररामचरित के उन अंशों की विवेचना करना भी अपेक्षित है जिन्हें भवभूति की पूर्णतः मौलिक उद्भावनाएँ माना जाता है । सम्भवतः इनके आधार पर ही उत्तररामचरित की गणना उच्चकोटि के रूपकों में जाती है ।

प्रथम अंक के प्रारम्भ में चित्रवीथी का प्रसंग कवि के उर्वर मस्तिष्क की उपज है । यद्यपि अपनी इस प्रस्तुति के लिए भवभूति, कालिदास के

1. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड सर्ग 42-32, 33, 34 ।

रघुवंश में चित्रित चित्रवीथी के दृश्य <sup>1</sup> से प्रेरित हो सकते हैं। लेकिन उत्तररामचरित में यह दृश्य अधिक नाटकीय तथा भावपूर्ण होने के कारण भवभूति का अपना सा हो गया है।

राम का राज्याभिषेक होने के बाद, वृद्धजनों के चले जाने से क्षुब्ध सीता को प्रसन्न करने के विचार से कवि ने चित्रवीथी की योजना की है। कवि को यह प्रस्तुति राम के पूर्वजीवन को चित्रित करने के साथ-साथ उत्तरजीवन की उन घटनाओं का संकेत देने में सक्षम है, जिनका निर्वहण प्रस्तुत रूपक के आगामी अंकों में किया गया है। तथा कथानक के विकास में सहायक है। वास्तव में दर्शकों को प्रारम्भ में ही उन समस्त घटनाओं का पूर्वाभास हो जाता है जिन्हें वह भविष्य में प्रत्यक्ष रूप में देखते हैं जैसे:- सीता की सन्तानों को जृम्भकास्त्र की प्राप्ति,<sup>2</sup> सीता परित्याग, परित्याग के समय गंगा तथा पृथ्वी के द्वारा सीता की सुरक्षा,<sup>3</sup> शीघ्र ही होने वाला राम का असहनीय विरह,<sup>4</sup> गुरुजनों से मिलन,<sup>5</sup> तथा नाटक का सुखद अन्त।<sup>6</sup>

1. "तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियाधानासेदुषोः सद्गुणं चित्रवत्सु। प्राप्तानि-  
दुःखान्यपि दण्डकेषु सञ्चिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन् ॥"

कालिदास, रघुवंश 14-25

2. राम:- "सर्वधेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति ।" उत्तररामचरित, 1. पृ 48

3. राम:- "सा त्वमम्ब! स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्यानाभव।"

1. पृ 62

राम:- "सुशलाधया दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्" - वही

4. राम:- "किमस्या न प्रेयो ? यदि परम सह्यस्तु विरहः।"

प्रतीहारी:- "देवः उपस्थितः ।" - वही, 1.38

5. अष्टपवक:- "ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्

"तत्पुत्रपूणीत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्याम् इति" - वही, 1. पृ 40

6. नट:- "सर्वथा ऋषयो देवताश्च श्रेयोविधास्यन्ति" - वही 1. पृ 27

इस प्रकार भवभूति ने दर्शकों को महत्त्वपूर्ण घटनाओं का पूर्वाभास कराकर उत्कृष्ट नाट्य कला का प्रदर्शन किया है ।

दूसरे अंक में वासन्ती तथा आत्रेयी नामक वनतपस्विनियों की उपस्थिति कवि की मौलिक कल्पना है । इन पात्रों के वातालाप के माध्यम से कवि ने प्रथम एवं द्वितीय अंक के मध्य हुए, बारह वर्ष के कालिक व्यवधान की लम्बी खाई को पाटने का सराहनीय प्रयास किया है । यद्यपि नाट्य-शास्त्र का नियम है कि कथावस्तु में इतना लम्बा कालिक व्यवधान नहीं होना चाहिए । लेकिन भवभूति ने अपने नाटकीय कौशल से काल के इस व्यवधान को कुछ संकेत चिह्नों की सहायता से दूर सा कर दिया है ।

अंक के प्रारम्भ में ही कवि ने दर्शकों को यह सूचित कर दिया है कि कुश-लव ग्यारह वर्ष के हो चुके हैं तथा वाल्मीकि द्वारा उनका दीक्षा संस्कार कर दिया गया है । <sup>1</sup> ऋष्यशृंग का बारह वर्षीय युद्ध समाप्त होना <sup>2</sup> अरुन्धती वसिष्ठ तथा दशरथ की रानियों का वाल्मीकि आश्रम में आना, लक्ष्मण के चन्द्रकेतु नामक पुत्र का होना, कुश-लव को जृम्भकास्त्र का स्वाभाविक रूप से प्रकट होना, <sup>3</sup> राम के अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ होना तथा सहघर्मचारिणी के रूप में सीता की हिरण्यमयी प्रतिमा को

1. आत्रेयी- "तदनन्तरं भवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्या-मध्यापितौ ।" उत्तररामचरित, 2.पृ 122
2. आत्रेयी- संप्रति परिसमाप्तं द्वादशवार्षिकं सत्रम् । ऋष्यशृङ्गेण च संपूज्य विसर्जिता गुरवः । ततो भवत्यरुन्धती "नाहं वधू विरहितामयोध्यां गच्छामि" इत्याह । तदेव राममातृभिरनुमोदितम् । तदनु रोधाद्भवतो वसिष्ठस्यापि श्रद्धा "वाल्मीकिवनं गत्वा वत्स्याम" इति ।" वही, 2 पृ 137
3. आत्रेयी:- "तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि जन्मसिद्धानीति ।" वही, 2.पृ 122



स्वीकार करना । एवं शम्बूक का वध करने के लिए राम का दण्डकारण्य में आना इत्यादि ।

बारह वर्ष में घटित उपर्युक्त घटनाओं से अवगत हो जाने पर दशक, प्रथम तथा द्वितीय अंक के बीच एक निरन्तरता का अनुभव करते हैं ।

शम्बूक वध के बहाने राम को दण्डकारण्य में लाने की योजना भी भवभूति की कल्पना का ही एक उदाहरण है ।

उत्तररामचरित के तीसरे अंक में कवि ने सीता को छाया रूप में प्रस्तुत किया है । राम की तीव्र मनोव्यथा को देखने के लिए तथा सीता के हृदय की शुद्धि के लिए सीता को अदृश्य रूप में उपस्थित करना भवभूति की अनूठी कल्पना है । सीता परित्याग के बाद कवि का मुख्य उद्देश्य राम-सीता का पुनर्मिलन कराना है । जिसके लिए कवि दूसरे अंक से ही वातावरण तैयार करता है तथा सातवें अंक तक निरन्तर प्रयत्नशील रहता है ।

अंक के प्रारम्भ में ही यह ज्ञात हो जाता है कि गंगा के प्रभाव से सीता को, मनुष्यों की तो बात ही क्या देवता भी नहीं देख सकते हैं । इस प्रकार सीता एक छाया के रूप में उपस्थित की जाती है । प्रारम्भ में सीता राम को "राजन्" कहकर पुकारती है । इस एकशब्द में ही सीता का आन्तरिक रोष पूर्णतः प्रकट होता हुआ प्रतीत होता है । लेकिन जब वह राम के पीले मुख तथा कृश शरीर को देखती हैं तथा पंचवटी के चिरपरिचित दृश्यों को देखने पर सीता के विरह में राम को मुक्त कंठ से विलाप करते हुये एवं बार-बार मूर्छित होते हुये पाती हैं तो उनके हृदय का आक्रोश काफी

1. आश्रयी :- "हिरण्यमयी सीताप्रकृतिर्गृहिणीकृता" उत्तररामचरित,

सीमा तक दूर हो जाता है । राम के प्रति उन्हें सहानुभूति हो जाती है तथा वह तमसा के कहने पर उन्हें स्पर्श करके चेतना मुक्त करती हैं । उन्हें विश्वास हो जाता है कि राम इस लम्बी अवधि में उनके विरह में बहुत व्याकुल रहे हैं । राम कितने दुःखी हैं सीता का यह पत्नी हृदय भली-भाँति जानता है । <sup>1</sup> जब वासन्ती राम को चिरपरिचित वनप्रदेशों को दिखाती है तथा सीता का पक्ष लेकर राम के अनैतिक आचरण की निन्दा करती है । <sup>2</sup> तब सीता के लिए राम का दुःख असहनीय हो जाता है । वह अपनी सखी के प्रति कठोर शब्दों को कहती हैं । राम के कृष्ण कुन्दन को सुनकर सीता का हृदय द्रवित हो जाता है और वह पश्चात्ताप करने लगती हैं । जो सीता कुछ समय पूर्व राम को "राजन्" कहकर पुकारती है वही राम को पुनः "दुर्लभ दर्शन" तथा "आर्यपुत्र" आदि विशेषणों से सम्बोधित करती है । अन्त में राम को यह कथन कि उन्होंने यज्ञ में सहधर्म-चारिणी के रूप में सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा को स्वीकार किया है । सीता के मस्तिष्क से परित्याग रूपी शल्य को पूरी तरह उखाड़ फेंकता है तथा सीता का आक्रोश श्रद्धा और विश्वास में बदल जाता है ।

इस प्रकार भवभूति ने राम के प्रति सीता की मनोवृत्ति में बहुत ही कुशलतापूर्वक धीरे-धीरे परिवर्तन किया है । वास्तव में इस अंक का छाया मिलन, सातवें अंक के वास्तविक मिलन से कहीं अधिक नाटकीय तथा भावपूर्ण है । यद्यपि इस भावात्मक प्रक्रिया में नाटकीय कथावस्तु का बाह्य विकास अवरूढ़ सा हो गया है किन्तु यहाँ कथावस्तु की आन्तरिक गतिशीलता ही प्रमुख है । राम-सीता कथा के एक बिन्दु पर खड़े रहकर भी अपने भावी मिलन की दिशा में एक लम्बी दूरी तय कर लेते हैं । प्रस्तुत अंक में राम के विलाप में कृष्ण रस का चरमोत्कर्ष देखा जा सकता है ।

1. सीता:- "अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममैषः" उत्तररामचरित तृतीय अंक ।

2. उत्तररामचरित - 3. 26-27 ।

करुण रस को एकमात्र रस मानने वाले कवि के लिए इससे अच्छा अवसर और कहाँ हो सकता था। सम्भवतः इसी आधार पर विद्वानों का विचार है कि "कारुण्यं भवभूतिरेवतनुते" कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल के समान, उत्तररामचरित का यह तीसरा अंक नाटक के सभी अंकों में श्रेष्ठ है।

चतुर्थ अंक में वाल्मीकि आश्रम में वसिष्ठ, अरुन्धती जनक तथा राम की माताओं को उपस्थित करना भवभूति की अद्भुत कल्पना है। इन वृद्धजनों के उपस्थित होने का संकेत हमें दूसरे अंक में वासन्ती तथा आत्रेयी के वातालिप से ही मिल जाता है।<sup>1</sup> पूर्व अंकों में दर्शक अपने आपको एक कारुणिक वातावरण में ही पाते हैं जो नाटक के अंक से ही प्रारम्भ होता है और तीसरे अंक में करुणा की चरमसीमा पर पहुँच जाता है। अतः दर्शकों को इस कारुणिक तनावपूर्ण वातावरण से मुक्त करने के लिए कुछ हास्य मनोविनोद की आवश्यकता महसूस होती है। जिसकी पूर्ति कल्पना के धनी भवभूति चतुर्थ अंक में करते हैं। प्रस्तुत अंक में सौधातिक एवंदाण्डायन नामक दो वाल्मीकि शिष्यों के वातालिप में, उत्सुकता, हास्य तथा प्रसन्नता के क्षणों का अवसर देकर भवभूति अपनी नाटकीय चतुरता तथा दर्शक एवं पाठकों के मनोभावों को समझने की कुशलता का परिचय देते हैं। इस प्रकार जहाँ आकर दर्शक कुछ विश्रान्ति का अनुभव करते हैं।

तृतीय अंक में राम की भावनाओं से अवगत हो जाने पर सीता सन्तोष का अनुभव करती हैं। अब राम की माता जनक तथा सीता के पिता जनक के मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए स्थान की आवश्यकता थी। जिसको पूर्ति भवभूति चतुर्थ अंक में करते हैं। अपनी पुत्री सीता के दुःख से दुःखी जनक वैखानस हो गये हैं। वे अपनी पुत्री के अघमान पर क्रुद्ध हैं एवं

1. द्रष्टव्य:- इसी अध्याय में पृ 16 का सन्दर्भ

लोक तथा राम को नष्ट कर देना चाहते हैं ।<sup>1</sup> किन्तु अरुन्धती के समझाने पर शान्त हो जाते हैं । इसी प्रकार कौशल्या अपने पुत्र के निन्दनीय कर्म से जनक का सामना करने में ग्लानि का अनुभव करती हैं । इस प्रकार भवभूति ने दोनों के मिलन की नाटकीय आवश्यकता को काफी गम्भीरता के साथ चित्रित करते हुये राम-सीता के भावी मिलन की सम्भावना को न्याय संगत बना दिया है ।

कवि ने इसी अंक में लव को रंगमंच पर उपस्थित कराकर दर्शकों की उत्सुकता को बढ़ा दिया है । जनक और कौशल्या उसकी आकृति और सौन्दर्य में राम-सीता की समरूपता का अनुभव करते हैं । और उसका परिचय प्राप्त करना चाहते हैं । किन्तु कवि ने इस अंक में लव के विषय में कुछ भी जानकारी न देकर उसके चरित्र को रहस्यात्मक बना दिया है ।

इस प्रकार चतुर्थ अंक की कथावस्तु नाटकीय संविधान की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त एवं महत्त्वपूर्ण हैं ।

पाँचवे और छठे अंक में लव और चन्द्रकेतु का युद्ध होना, राम का पहुँचना लव-कुश का आलिङ्गन करना तथा यह विचार करना कि वे उनके पुत्र ही हैं, इत्यादि घटनार्ये भवभूति की कल्पना से ही प्रसूत हैं ।

अन्त में गर्भनाटक कवि की पूर्णतः मौलिक कल्पना है । वाल्मीकि आश्रम में सभी प्रजाजनों एवं वृद्धजनों की उपस्थिति पृथ्वी तथा गंगा के साथ

1. जनकः-एतद्वैश्वजृघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः ।

क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन वा ।।

सीता का नाटकीय रूप में उपस्थित होना, सीता के चरित्र के विषय में अरुन्धती का प्रमाण देना तथा अन्त में सभी वृद्धजनों एवं राम-सीता का सुखद मिलन भवभूति की कल्पना के ही विषय हैं ।

कवि ने इस अंक की रचना सीता के चरित्र के बारे में प्रजाजनों को विश्वास दिलाने के लिए तथा नाटक के सभी पात्रों को एक जगह उपस्थित कराने के उद्देश्य से की है । तृतीय अंक में तमसा एवं मुरला के वार्तालाप से यद्यपि दर्शकों को परित्याग के बाद सीता की दयनीय दशा का ज्ञान हो जाता है ।<sup>1</sup> लेकिन प्रजाजन एवं राम इससे अनभिज्ञ हैं । अतः भवभूति उन समस्त घटनाओं को गर्भनाटक में प्रदर्शित कराते हैं । इस प्रकार सीता प्रजाजनों की सहानुभूति अर्जित कर लेती है । जिस प्रकार सीता की पवित्रता को प्रामाणित करने के लिए अग्निशुद्धि एक अतिप्राकृतिक घटना थी ठीक वैसे ही सीता के चरित्र को प्रामाणित करने के लिए पृथ्वी तथा गंगा के साथ सीता को विलक्षण रूप से रंगमंच पर उपस्थित करना भी एक अतिप्राकृतिक घटना है । अन्त में अरुन्धती के आदेशानुसार राम, सीता को पुनः स्वीकार कर लेते हैं । सीता की स्वीकृति का यही प्रकार मनोवैज्ञानिक तथा नाटकीय दृष्टि से औत्सुक्य वर्धन है ।

1. तमसा :- "तत्सर्वं श्रूयताम् । पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठा -  
त्परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतादेवी प्राप्त प्रसवेदन-  
मतिदुःखसंवेगादात्मनं गंगाप्रवाहे निक्षिप्तवती । तदैव  
तत्र दारकद्वयं च प्रसूता भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्या-  
मप्युभाभ्याभ्युपपन्ना रसातलं च नीता । स्तन्यत्यागा-  
त्परेण दारकद्वयं च तस्य प्राचेतसस्य महर्षेः श्लादेव्या समर्पितं  
स्वयम् ।"

उत्तररामचरित, तृतीय अंक का प्रारम्भ

अतः कहा जा सकता है कि गभीर नाटक सम्पूर्ण नाटक का कथासार है । जिसकी रचना वाल्मीकि ऋषि ने की है तथा भरतमुनि के निर्देशन में दिव्य सुन्दरियों के द्वारा जिसको प्रदर्शित किया गया है । तृतीय अंक का छाया मिलन यहाँ वास्तविक रूप धारण कर लेता है । इस प्रकार नाटक का सुखद अन्त होता है ।

### नाट्यशास्त्र के आधार पर कथानक संरचना का मूल्यांकन

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि उत्तररामचरित में कथानक का बाह्य विकास नहीं बल्कि आन्तरिक गतिशीलता ही प्रमुख है । अर्थात् इसमें घटनाओं की बहुलता नहीं बल्कि भावनाओं की प्रधानता है । इस प्रकार उत्तररामचरित एक भावना प्रधान नाटक है । अतः इसमें नाट्य-शास्त्र के समस्त पहलुओं को नहीं खोजा जा सकता है । फिर भी कुछ पहलुओं पर विचार करना अपेक्षित है ।

इसमें राम-सीता से सम्बन्धित घटनाएँ आधिकारिक कथावस्तु हैं । प्रासङ्गिक कथाओं की कवि ने अधिक योजना या विस्तार नहीं किया है तथा कुशलतापूर्वक प्रासङ्गिक कथाओं को आधिकारिक कथावस्तु का ही सहायक बना दिया है ।

उत्तररामचरित में अर्धप्रकृतियाँ, कार्यावस्थायें तथा सन्धियाँ भी देखी जा सकती हैं ।

प्रस्तुत रूपक के प्रथम अंक के प्रारम्भ से 49वें श्लोक तक "मुख-सन्धि" का विस्तार है । कवि ने राम के प्रति महर्षि वसिष्ठ के सन्देश में ही अत्यल्प रूप में सम्पूर्ण नाटक का "बीज" निहित कर दिया है । वसिष्ठ का संदेश है कि "प्रजा के अनुरञ्जन के लिए सावधान रहना चाहिए" यह सन्देश प्रत्येक परिस्थिति में राम को प्रजा के प्रति अपने कर्तव्य को

पूरा करने के लिए सजग करता रहता है और अन्त में भी राम प्रजा की स्वीकृति पर ही सीता को स्वीकार करते हैं । इस प्रकार उपर्युक्त संदेश सम्पूर्ण कथानक का निचोड़ है ।

सीता के विषय में जनापवाद को जानकर, परित्याग स्वी निर्णय को कार्यरूप देने के लिए राम, लक्ष्मण को आदेश देते हैं ।<sup>1</sup> यही "आरम्भ" नामक कायावस्था है । अतः "बीज" नामक अर्थप्रकृति एवं "आरम्भ" नामक कायावस्था का योग होने से यहाँ "मुखसन्धि" है । इस सन्धि की मुख्य घटनायें इस प्रकार हैं :- जामाता ऋष्यशृंग के आश्रम में यज्ञ में उपस्थित होने के लिए राम की माताओं का जाना, वसिष्ठ, अरु - न्धती, शांता एवं राजमाताओं के सन्देश के साथ अष्टावक्र का आना, चित्र-वीथी दृश्य, दुर्मुख द्वारा सीता के विषय में जनापवाद की सूचना तथा राम का सीता परित्याग का निर्णय ।

स्वयं के प्रथम अंक के अन्त में नेपथ्य से, सहायता के लिए की गयी पुकार से<sup>2</sup> "प्रतिमुख सन्धि" का प्रारम्भ होता है एवं दूसरे अंक के अन्त तक इसका विस्तार है । लवणासुर के वृत्तान्त तथा शम्बूक की कथा से मूल कथा का क्रम टूटता हुआ प्रतीत होता है । लेकिन दूसरे अंक में राम को, शम्बूक से जब ज्ञात होता है कि जिस स्थान पर वह इस समय उपस्थित है वह "दण्डकारण्य" है । यह कथन उनकी मधुर स्मृतियों को याद दिलाने के लिए तथा मूल कथा का फिर से सूत्रपात करने के लिए

1. राम - "दुर्मुख । ब्रूहि लक्ष्मणम् । एष नूतनो राजा रामः समाज्ञा-  
पयति । ।कर्णे। एवमेवम् । इति" उत्तररामचरित । ॥४०॥०३

2. ।नेपथ्ये। अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम् ।" वही, पृ ॥१०

अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । नाट्यशास्त्र के अनुसार इस प्रकार की अवस्था "बिन्दु" नामक अर्थप्रकृति कहलाती है । राम की सीता से मिलने की अत्यन्त व्याकुलता "प्रयत्न" नामक कायाविस्था है । अतः यहाँ "बिन्दु" तथा "प्रयत्न" का योग होने से "प्रतिमुखसन्धि" सन्धि है । इस सन्धि की मुख्य घटनार्यें इस प्रकार हैं :- लवणासुर का वध करने के लिए राम का शत्रुधन को भेजना, सीता का वननिवास, लव एवं कुश को वाल्मीकि द्वारा शिक्षित करने की सूचना और शूद्र तपस्वी शम्बूक को मारने के लिए राम का पंचवटी में आना ।

उत्तररामचरित के तृतीय अंक में "गर्भसन्धि" का विस्तार है जिसमें फलप्राप्ति की केवल सम्भावना ही रहती है । प्रस्तुत अंक में बीज उस समय विकसित होता हुआ प्रतीत होता है जब राम-सीता पंचवटी में एक साथ उपस्थित होते हैं । इस संसार में सीता के अस्तित्व के बारे में राम की सन्देह है । अतः फल प्राप्ति की आशा प्रतीत नहीं होती लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से सीता से मिलकर उनके जीवित होने से पुनर्मिलन की आशा बंध जाती है। इस प्रकार की अवस्था "प्राप्त्याशा" नामक कायाविस्था कहलाती है । अंक के प्रारम्भ में तमसा और मुरला के वातालाप के माध्यम से परित्याग के बाद सीता की दयनीय दशा का ज्ञान हो जाता है, अतः यहाँ "पताका" नामक अर्थप्रकृति है । इस प्रकार "प्राप्त्याशा" तथा "पताका" का योग होने से यहाँ "गर्भसन्धि" है इस सन्धि की मुख्य घटनार्यें हैं:- पंचवटी में राम का छाया सीता से मिलना, राम से सीता परित्याग का कारण जानने में वासन्ती की उत्सुकता तथा राम का सीता के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त करना ।



रूपक के चौथे, पाँचवें तथा छठे अंकों में "विमर्श सन्धि" प्राप्त है । जिसमें गर्भसन्धि में विकसित हुआ बीज फल प्राप्ति का निश्चय करा देता है । जनक और कौशल्या के लव को देखने तथा उसमें राम-सीता की अनुरूपता का अनुभव करने में बीज विकास को प्राप्त करता है । इसी प्रकार राम, कुश-लव को देखते हैं एवं विभिन्न अभिज्ञान चिह्नों को देखकर उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि ये उन्हीं के पुत्र हैं, बीज को अधिक स्पष्ट कर देता है और इस प्रकार राम-सीता के मिलन रूप फल प्राप्ति का निश्चय हो जाता है । इस प्रकार की अवस्था "नियताप्ति" कहलाती है । कौशल्या एवं जनक के मिलन में "प्रकरी" है । अतः "नियताप्ति" नामक कार्यावस्था तथा "प्रकरी" नामक अर्थप्रकृति का योग होने से यहाँ "विमर्श सन्धि" है । इस सन्धि की मुख्य घटनायें हैं :- वाल्मीकि के आश्रम में वृद्धजनों का आना, जनक-कौशल्या का मिलना, उनका लव से मिलना, लव का राम के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ना, चन्द्रकेतु एवं लव के बीच युद्ध एवं आवेशपूर्ण शब्द कहना, तथा राम का वहाँ पहुँचना ।

अन्तिम अंक में "निर्वहण सन्धि" है । रूपक की कथावस्तु के विभिन्न अंश जो सम्पूर्ण रूपक में इधर-उधर बिखरे हुये थे सप्तम अंक में एक जगह एकत्रित हो जाते हैं । सीता के परित्याग के बाद की घटनाओं को गभीर नाटक में प्रदर्शित करके तथा अरुन्धती द्वारा सीता की पवित्रता का प्रमाण देकर राम को सीता की स्वीकृति के लिए प्रस्ताव करना "कार्य" नामक अर्थप्रकृति है एवं राम का सीता से पुनर्मिलन "फलागम" नामक कार्यावस्था है । अतः "कार्य" तथा "फलागम" का योग होने से "निर्वहण सन्धि" है । इस सन्धि की मुख्य घटनायें हैं :- अप्सराओं द्वारा एक नाटक का प्रदर्शन, सीता के परित्याग के बाद की कथा का चित्रण, सीता को पुनः प्राप्त करने के लिए अरुन्धती का राम को प्रस्ताव तथा प्रजा की स्वीकृति पर राम का सीता को स्वीकारना एवं अपने पुत्रों से मिलना ।

रूपक के कथावस्तु से सम्बन्धित विभिन्न अंगों में "पताका-स्थानक" का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । इसके सुन्दर प्रयोग कथा को और भी अधिक प्रभावशाली बना देते हैं । उत्तररामचरित के प्रथम अंक में इसका सुन्दर उदाहरण देखा जा सकता है । जिसका उल्लेख प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के प्रथम अध्याय में किया जा चुका है ।

प्रस्तुत रूपक की उन घटनाओं अथवा दृश्यों को, जिन्हें रंगमंच पर दिखाना अभिप्रेत नहीं था कवि ने दर्शकों को उनकी सूचना "अर्थोपक्षेपकों" के माध्यम से दी है । प्रस्तुत रूपक में "विष्कम्भकों" का प्रयोग कुशलतापूर्वक हुआ है । दूसरे अंक में प्रयुक्त विष्कम्भक कवि की कार्यकुशलता का एक सुन्दर उदाहरण कहा जा सकता है । पहले एवं दूसरे अंक में हुये बारह वर्ष के कालिक व्यवधान को इस विष्कम्भक में कवि ने कुछ संकेत चिह्नों की सहायता से सफलतापूर्वक दूर कर दिया है ।

इसी प्रकार उत्तररामचरित में "चूलिका" का अनेक स्थानों पर प्रयोग करके कवि ने अर्थोपक्षेपकों का श्लाघनीय प्रयोग किया है ।

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि भवभूति ने प्रख्यात कथावस्तु के एक समस्यामूलक अंश को प्रस्तुत रूपक का विषय बनाया है । रामायण में उत्तरकाण्ड में यह रामकथा संक्षिप्त रूप में वर्णित है । लेकिन कवि ने अपनी प्रतिभा से अनेक नवीन उद्भावनाओं का प्रयोग करके इसे सात अंकों तक विस्तृत किया है । जिस रामकथा को आदिकवि वाल्मीकि ने दुःखद रूप में चित्रित किया है परन्तु कल्य रस को मुख्य रस मानने वाले भवभूति ने उसे सुखांत रूप में चित्रित करके न केवल नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन किया है बल्कि सामाजिकों के समक्ष प्रेम का एक आदर्श रूप चित्रित

किया है । उत्तररामचरित भवभूति के तीनों रूपकों में श्रेष्ठ है, फिर भी दोषों से पूर्णतः मुक्त नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह रूपक घटना प्रधान न होकर वर्णन प्रधान है । कवि ने छोटे-छोटे प्रसंगों का भी लम्बा तथा विस्तृत वर्णन किया है । घटनायें मन्द गति से आगे बढ़ती हैं, जिससे कथावस्तु के विकास में शिथिलता आ गयी है । लेकिन कवि की कलात्मक भावना एवं रचना, मनुष्य की भावनाओं की गहरी समझ, अद्भुत कल्पना शक्ति तथा उनके द्वारा राम कथा को प्रदान किया गया अत्यधिक महत्त्व ये सब इनके दोषों की क्षतिपूर्ति कर देते हैं एवं प्रस्तुत रूपक को संस्कृत साहित्य में एक उच्च स्थान प्राप्त कराते हैं ।

कथानक संरचना में भवभूति की कला  
=====

## अध्याय - 5

### कथानक संरचना में भवभूति की कला

भवभूति द्वारा लिखित तीनों रूपकों का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि वे शनैः शनैः महाकवि के पद पर प्रतिष्ठित हुये थे। महावीर-चरित से भवभूति ने रूपकों की रचना प्रारम्भ की। मालतीमाधव में उनकी कला विकासमान अवस्था से होती हुयी उन्नति की ओर अग्रसर हो रही थी। उत्तररामचरित में इस कला के प्रदर्शन को भवभूति की क्षमता का चरमोत्कर्ष मानना चाहिए।

एक अच्छा रचनाकार वही है जो अपनी रचना को जाँचता है परखता है एवं भविष्य में उन गलतियों को नहीं दोहराता है। इस दृष्टि से भवभूति एक सफल नाटककार प्रतीत होते हैं। महावीरचरित में वे अपना शास्त्रीय ज्ञान एवं पाण्डित्य को प्रदर्शन करते हैं किन्तु इसकी असफलता को देखते हुये उन्होंने मालतीमाधव में स्वयं ही स्वीकार किया है कि "वेद और उपनिषदों का अध्ययन तथा दर्शनशास्त्र की विभिन्न शाखाओं का ज्ञान ही एक नाटक के उपकरण नहीं बन सकते हैं। बल्कि रसों का प्रचुर चित्रण नाट्यवस्तु का कुशलतापूर्वक समायोजन, प्रभावोत्पादक लेखन शैली भी कलात्मक रचना के अवयव हैं।"<sup>1</sup>

भवभूति ने महावीरचरित तथा उत्तररामचरित में वाल्मीकि के बृहद् ग्रन्थ रामायण की कथा को संक्षिप्त रूप में व्यक्त किया है। रूपक

- 
1. "यद्वेदाध्ययनं तथापनिषदां सांख्यस्य योगस्य च  
ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद् गुणो नाटके ।  
यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं  
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्य वैदग्ध्ययोः ।

की रचना करते समय भवभूति ने हानोपान बुद्धि का पर्याप्त रूप से प्रयोग किया है। उपर्युक्त दोनों नाटकों का स्रोत यद्यपि एक ही ग्रन्थ है तथापि दोनों की कलात्मकता में एक स्पष्ट अन्तर है। सम्भवतः एक कवि की कला के विकास का प्रथम चरण है तो दूसरा उनके पूर्ण परिपक्व मस्तिष्क की देन है। कवि ने दोनों रूपकों की कथानक संरचना के लिए मूलकथा से अनेक परिवर्तन किये हैं। कुछ परिवर्तन पात्रों के चरित्र को दूषित होने से बचाने के लिए किये हैं तो कुछ, कथानक में एकात्मक अभिनय के प्रभाव की दृष्टि से किये हैं। महावीरचरित की अपेक्षा उत्तररामचरित की कथानक संरचना में भवभूति ने महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है लेकिन वह पूर्णतः दोषों से मुक्त नहीं है। मालतीमाधव की कथावस्तु कविकल्पित है परन्तु इस पर बृहत्कथा का प्रभाव स्पष्टता देखा जा सकता है। इसकी कथावस्तु संरचना भी भवभूति ने भली भाँति की है लेकिन असम्भाव्य घटनाओं की प्रस्तुति एवं अति-विस्तार के कारण दोष भी हैं।

प्रस्तुत अध्याय में भवभूति की कला के उस पक्ष पर विचार करना अपेक्षित है जिसे उन्होंने अपने तीनों रूपकों के वस्तुसंगठन में प्रदर्शित किया है ।

रूपकों में कथावस्तु के एकात्मक प्रभाव की दृष्टि से देश, काल तथा कार्य नामक अन्वितित्रय का समुचित निवाह करने की एक नाटककार से अपेक्षा की जाती है। इसका पालन करने में भवभूति, कालिदास की अपेक्षा अधिक सफल हुये हैं। उन्हें परशुराम का महेन्द्र पर्वत से मिथिलापुरी में पहुँचना अस्वाभाविक लगता है। अतः काल की एकता बनाये रखने के लिए वह मिथिलापुरी में ही उनकी उपस्थिति का चित्रण करते हैं। उत्तररामचरित में कवि ने बारह वर्ष के अन्तराल को इतनी सुन्दरता के साथ दूरकर दिया है कि दर्शकों को इसका भान भी नहीं हो पाता।

अभिज्ञानशाकुन्तलमें कालिदास धरती से लेकर स्वर्ग तक के दृश्यों का वर्णन करते हैं। लेकिन भवभूति काल के साथ देश अर्थात् स्थान की एकता के प्रति भी सजग हैं। उन्होंने महावीरचरित की अधिकतर घटनाओं का केन्द्र मिथिलापुरी को ही बनाया है। यद्यपि ऐसा करने में स्पष्ट में कुछ शिथिलतायें आ गयी हैं। जैसे- मिथिला में राम का राज्याभिषेक करने का विचार उचित प्रतीत नहीं होता है। उत्तररामचरित का कथानक अयोध्या के राजपुत्राद, जनस्थान, दण्डकारण्य तथा वाल्मीकि के आश्रम तक फैला है लेकिन कथावस्तु के विकास में इन विविध स्थानों का समावेश अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होता है। यदि भवभूति अयोध्या के राजमहल में ही राम-सीता का पुनर्मिलन चित्रित करते तो यह इतना भावात्मक एवं नाटकीय नहीं हो पाता, जितना उत्तररामचरित में हुआ है।

जहाँ तक कार्य की एकता का सम्बन्ध है उसमें भवभूति अपेक्षाकृत कम सफल हुये हैं। मालतीमाधव के पञ्चम अंक में कराला मंदिर का दृश्य अत्यन्त प्रभावशाली एवं भावात्मक है तथा कथावस्तु के विकास की चरमसीमा को प्रस्तुत करता है। लेकिन इसी क्रम में शमशान का जो भीषण चित्र खींचा गया है वह भले ही रौद्र, वीभत्स आदि रसों की दृष्टि से सफल है किन्तु कथानक के साथ उसकी कोई संगति प्रतीत नहीं होती। इसी प्रकार उत्तररामचरित के पाँचवे और छठे अंक का युद्ध दृश्य कवि की काव्यात्मक प्रतिभा को तो प्रदर्शित करता है लेकिन कथानक की दृष्टि से कुछ अप्रासंगिक सा ही प्रतीत होता है।

भवभूति कथानक संरचना में कभी-कभी अत्यन्त चमत्कारिक शैली के द्वारा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं, जिससे कथानक का स्वतः विकास होने लगता है। परशुराम का विकट रूप प्रकट करके भवभूति राम के चरित्र की गम्भीरता के माध्यम से, अपने आक्षेपों को सहन करने की सामर्थ्य को व्यक्त करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ जुटा लेते हैं। इसी प्रकार

राम के प्रति अपने आक्रोश को भवभूति लव के माध्यम से व्यक्त करते हैं।<sup>1</sup>

भवभूति ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए एवं रूपकों में अलौकिकता का समावेश करने के लिए अनेक ऐसी घटनाओं को स्थान दिया है जिन्हें किसी भी दृष्टि से मानवीय नहीं कहा जा सकता है। यह कवि की कथानक संरचना की एक विशेषता ही है। उदाहरण के लिए मन्थरा के शरीर में शूर्पणखा का प्रवेश करना, माधव का आकाश में भ्रमण, छाया सीता की कल्पना इत्यादि ऐसी घटनाएँ हैं जिनकी वास्तविक जीवन में केवल कल्पना ही की जा सकती है। इन दृश्यों को रूपक में स्थान देने से भवभूति की रचनाओं में अधिक कलात्मकता एवं प्रभावोत्पादकता का समावेश हो गया है। अधिक क्या कहा जाय, छाया सीता की कल्पना के आधार पर ही उत्तररामचरित श्रेष्ठ नाटकों में स्थान प्राप्त करता है। परन्तु उपर्युक्त दृश्यों के रंगमञ्च पर प्रदर्शन की दृष्टि से विचार करें तो इन पर एक प्रश्न-चिह्न लग जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में किसी भी अतिमानवीय या अतिप्राकृतिक दृश्य का चलचित्र पर प्रदर्शन करना कठिन कार्य नहीं है। लेकिन प्राचीनकाल में इस प्रकार के दृश्यों का, अभिनेयता के साथ रंगमञ्च पर प्रत्यक्ष प्रदर्शन कठिन ही नहीं असम्भव भी था। अधिक अच्छा होता भवभूति ने किसी अन्य बौद्धिक प्रयास से अपने लक्ष्य को प्राप्त किया होता। लेकिन इसके लिए भवभूति सम्भवतः अपने युग धर्म से प्रभावित प्रतीत होते हैं। क्योंकि भवभूति के युग में तन्त्र का बड़ा प्रचार था, तथा बौद्धों एवं हिन्दुओं से इस प्रकार की कल्पना की सम्भावना की जा सकती है। और उनके समय

- 
1. लवः- वृद्धास्ते न विचारणीयचरितस्तिष्ठन्तु हं वर्तते,  
 सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते ।  
 यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने,  
 यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥”



में रंगमञ्च पर इन्हें प्रदर्शित करना अस्वाभाविक नहीं था ।

भवभूति में, रूपक को सुसंगठित रूप देने के लिए कथानक को एक निरन्तर केन्द्रीय सूत्र में बाँधने की कला भी है। महावीरचरित में कवि ने इस प्रकार सामञ्जस्य स्थापित किया है कि उसमें पूरी कथा दो पक्षों के मध्य विकसित होती है। रामायण में प्राप्त होने वाले अवान्तर व्यापारों को उन्होंने या तो राम के समूह में या रावण के समूह में अन्तर्भुक्त कर दिया है। इस कार्य से रूपक में पात्रों के उद्देश्य को समझा जा सकता है। यहाँ भवभूति की कला की विशेषता यह है कि प्रत्येक पात्र का स्पष्ट लक्ष्य निर्धारित कर देते हैं एवं इस लक्ष्य को पूर्ति में कथानक आगे बढ़ता चला जाता है। कवि के इस कौशल से कथानक में विस्तार से बचने में सहायता मिलती है।

भवभूति के कथानक की एक विशेषता यह भी है कि वे पात्रों की मानसिकता में अति सहज रूप से परिवर्तन कर देते हैं। एक समय तक जो व्यक्ति कुछ और सोच रहा होता है वही किसी अन्य घटना के जानने से कुछ समय पश्चात् ठीक इसके विपरीत सोचने लगता है। महावीरचरित में सर्वमाय नामक राक्षस आता तो रावण का दूत बनकर है परन्तु वह राम के शौर्य से अभिभूत होकर रावण के सम्मुख भी उनकी प्रशंसा करने लगता है। जो सीता राम के प्रति आक्रोश से भरी हुयी थीं, केवल यह जानकर शान्त हो जाती हैं कि राम ने अश्वमेध यज्ञ में सहधर्मचारिणी के रूप में उनकी प्रतिमा को स्वीकार किया है। वह राम की स्थिति पर स्वयं शोक करने लगती हैं एवं कृष्णा से परिप्लुत हो जाती हैं। थोड़ी देर पहले जो सीता अपरिचित व्यक्ति के समान राम को "राजन्" कहकर सम्बोधित करती थीं वही सीता उन्हें "आर्यपुत्र" कहकर पुनः सर्वस्व अर्पित करती हुयी प्रतीत होती हैं। मालतीमाधव में राजा, अपने प्रिय सहचर नन्दन

के साथ मालती का विवाह कराना चाहता है । राजा की इस इच्छा को कामन्दकी द्वारा विफल कर दिये जाने पर वह तथा नन्दन दोनों ही मालती के प्रेमी माधव से बदला लेना चाहते हैं । लेकिन युद्ध में माधव की वीरता से इतने प्रभावित होते हैं कि स्वयं ही मालती एवं माधव के विवाह की प्रस्तापूर्वक स्वीकृति दे देते हैं अतः पात्रों की मानसिकता में परिवर्तन करना भवभूति की विशेषता है । इस प्रकार इन घटनाओं से भवभूति की नाट्यकला की सम्यक् अभिव्यक्ति होती है ।

प्रायः भवभूति मूलसूत्र की घटनाओं का इस प्रकार पुनर्व्यस्थापन करते हैं कि घटना के प्रभाव की तीव्रता चरम बिन्दु को स्पर्श करने लगती है । यथा विवाह के ठीक पश्चात् अयोध्या भेजे विना मिथिलापुरी से ही राम का वन भेज देना कल्याण के प्रसार को तीव्र गति प्रदान करता है । अपवादस्वस्थ भवभूति के इस कार्य में शिथिलता भी आ गयी है । राम के वनवास के समय मिथिलापुरी में भरत की उपस्थिति दिखाना भवभूति की एक गम्भीर भूल है । इससे भरत जैसे प्रसिद्ध पात्र के चरित्र में रामायण वाला उत्कर्ष नहीं आ सका । यदि संक्षिप्तता की दृष्टि से भवभूति ने राम वनगमन के समय भरत की उपस्थिति प्रदर्शित की है तो भी उचित नहीं है । किसी भी व्यवदेश से भवभूति, महात्मा भरत को राम के प्रवास का साक्षी होने से बचा सकते थे । रामायण में वर्णित भरत के द्वारा अपनाये गये मूल्यों का उनके रामवनगमन के साक्षी होने के दोष से कदापि साम-ञ्जस्य स्थापित नहीं किया जा सकता । रूपक में घटनाओं में परिवर्तन के लिए मिलने वाली स्वतन्त्रता पात्रों को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए तो उचित है परन्तु ऐसे किसी विषय की चर्चा न्यायसंगत नहीं समझी जा सकती, जिसमें उदात्त पात्र के चरित्र का किञ्चित् मात्र भी हास हो ।

भवभूति के कथानक षडयन्त्रों से परिपूर्ण हैं । इस दृष्टि से

उनकी शैक्सपियर के कतिपय नाटकों से तुलना की जा सकती है । दोनों में अन्तर यह है कि जहाँ शैक्सपियर के षडयन्त्र, नाटक में प्रगाढ़ संशय को जन्म देते हैं और अन्त तक एक संशयात्मक स्थिति बनी रहती है । वास्तव में षडयन्त्र का तात्पर्य ही यह है कि अन्य लोगों को इसके विषय में कोई जानकारी न हो, और इन षडयन्त्रों के तहत जो कुछ भी घटित हो, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक हो । वहीं भवभूति के रूपकों में हम पाते हैं कि पात्र षडयन्त्रों की स्पर्शा गुप्त न रखकर प्रत्यक्ष रूप से बनाते हैं । जिससे दर्शकों में संशय की भावना समाप्त प्रायः सी हो जाती है एवं इन्हें अभिनय रूप में देखने पर वे अधिक आश्चर्यचकित नहीं होते हैं । महावीरचरित में शूर्पणखा एवं रावण के मंत्री माल्यवान् का राम के विरुद्ध षडयन्त्र एवं मालतीमाधव में मालती एवं माधव का विवाह कामन्दकी द्वारा रचित षडयन्त्र का ही फल है । भवभूति इन गुप्त मंत्रणाओं की पूर्व सूचना न देकर सीधा अभिनय ही प्रस्तुत करते तो कथानक अधिक प्रभावशाली हो सकता था ।

ब्रेडले का विचार है कि "एक अच्छा कथानक वही है जो पूरे नाटक में भले ही दुःखानुभूति कराता रहे परन्तु नाटक का अन्त समस्या के समाधान में होना चाहिए न कि संकट में" । ये बातें शैक्सपियर में तो नहीं परन्तु भवभूति में अवश्य पायी जाती हैं ।

भवभूति के रूपकों में प्राप्त लम्बे-लम्बे आत्मकथन कवि के काव्य-कौशल, वैदग्ध्य एवं पाण्डित्य को तो प्रदर्शित करते हैं लेकिन किसी भी दृष्टि से अभिनेय के अनुकूल नहीं हैं । मालतीमाधव में प्राप्त लम्बे-लम्बे आलंकारिक वाक्यों, संवादों या विवरणों से यह रूपक न होकर उपन्यास सा प्रतीत होता है, एवं भाषा शैली में जटिलता का समावेश होने के कारण

1. Bradley, Shakesperian Tragedy, P.67.

घटनाओं को समझना कठिन प्रतीत होता है। महावीरचरित में शूण्णखी एवं रावण के मन्त्री माल्यवान् के मध्य राजनीतिक विषयक दीर्घ वातालाप कथानक के विकास को अवरोध करता है। लेकिन उत्तररामचरित में इस प्रकार के आत्मकथनों की योजना करने में भवभूति अधिक सफल हुये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि भौतिक घटनाओं के वर्णन एवं आलंकारिक अभिव्यक्ति से हटकर कथा के मनोवैज्ञानिक उद्गार तथा मानव हृदय की भाषा व्यक्त करते हैं।

मालतीमाधव की कथावस्तु संरचना भवभूति को एक कुशल कलाकार के रूप में चित्रित करती है। कवि ने अनेक कथासूत्रों को भिन्न-भिन्न स्रोतों से ग्रहण करके कुशलतापूर्वक एक विशेष क्रम में संजोया है। यद्यपि इसमें सामान्य प्रेम कथा को प्रस्तुत किया गया है परन्तु उसकी प्रस्तुति में कवि ने अनेक मौलिक उद्भावनाओं की सर्जना की है। वे नायक पर नायिका के अनुराग को प्रकट करने के लिए नायिका से उपहार नहीं भिजवाते, प्रत्युत उसके लिए नायक से उपहार की याचना कराते हैं।<sup>1</sup> इन दोनों प्रस्तुतियों में बहुत अन्तर है। इससे यह व्यक्त होता है कि नायक के लिए नायिका के उपहार का महत्त्व न भी हो, परन्तु नायिका के लिए नायक का उपहार विशेष रूप से स्पृहणीय है।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि मालतीमाधव दोषों से पूर्णतः मुक्त नहीं है। इस विषय में डा. आर. जी. भण्डारकर का विचार है कि "यद्यपि मालतीमाधव में विचारों की मौलिकता है, लेकिन कवि घटनाओं को व्यवस्थित करने में उतनी कुशलता प्राप्त नहीं कर सका है जितनी मृच्छ-कटिक एवं मुद्राराक्षस के लेखकों ने प्रदर्शित की है। जैसे शमशान का दृश्य मूल

---

1. मालतीमाधव, 1, पृ 64-65

कथा का भाग नहीं कहा जा सकता एवं अलग से जोड़ा हुआ प्रतीत होता है। कपालकुण्डला के द्वारा मालती का पुनः अपहरण, सामान्यतः विरह की अवस्था में मनुष्य की भावनाओं को चित्रित करने का कवि को भले ही एक अवसर प्रदान करता है लेकिन यहाँ माधव का विरह दर्शकों को उबाऊ-पन की स्थिति में पहुँचा देता है।<sup>1</sup> अतः कहा जा सकता है भवभूति प्रस्तुत रूपक के मुख्य उद्देश्य मालती एवं माधव के विवाह की राजा द्वारा स्वीकृति मिल जाने पर आँठवे अंक से रूपक का अन्त कर देते तो यह अधिक प्रभावशाली हो सकता था। लेकिन कवि ने मालती का पुनः अपहरण कराकर जहाँ एक ओर वातावरण को उबाऊ बना दिया है वहीं नाटक का अनावश्यक विस्तार किया है।

उत्तररामचरित में भवभूति की कलाकारिता निश्चित रूप से उच्च शिखर को प्राप्त कर लेती है। इस नाटक में तर्क यदि घटनाओं के क्रम को निश्चित करता है तो मनोविज्ञान किसी स्थान या दृश्य में पात्रों के मिलन को स्वाभाविक और विश्वासोत्पादक बनाता है। किसी भी दृश्य को गतिशील बना देने वाली भावना नाटकीय संवादों में एक विशिष्ट महत्त्व और प्रभाव भर देती है। कवि घटनाओं को इस प्रकार व्यवस्थित करता है कि आगामी घटनाओं के लिए मार्ग स्वतः ही प्रशस्त होता जाता है एवं कथानक विकास की दिशा में बढ़ता चला जाता है। सीता के दोहद को पूर्ण करने के लिए एवं सीता परित्याग का घातक निर्णय लेने के लिए कवि ने पहले से ही वसिष्ठ एवं शांता के संदेश की कल्पना करके रूपक में एक महत्त्वपूर्ण घटना को स्थान दिया है। राम को पञ्चवटी में पहुँचाने के लिए कवि, शम्भूक को तपस्या करते हुये पंचवटी में ही चित्रित करता है। आक्रोश की चादर से आवृत्त सीता के मन को अनावरित करने के लिए कवि पूर्वनिश्चित

---

1. Mirashi, Bhavabhuti, P. 202

दृश्यों से राम का पुनः परिचय कराकर उनके विरह का उद्गार कराते हैं, क्योंकि यदि सीता का आन्तरिक रोष दूर न होता तो नाटक के अन्त में होने वाला राम-सीता मिलन कदाचित् सम्भव न हो पाता । इस प्रकार उत्तररामचरित भवभूति की विकसित प्रविधि एवं प्रवीणता का सूचक है।

यद्यपि भवभूति ने रामायण की मूलकथा में अनेक परिवर्तन करके उत्तररामचरित की कथावस्तु संरचना कुशलतापूर्वक की है लेकिन इन परिवर्तनों को करने में उनसे कुछ गहरी भूलें हो गयी हैं, उनमें एक मुख्य दोष निम्न-लिखित है।

रामायण के अनुसार रावण का वध करने के बाद ही राम अयोध्या लौटे एवं अयोध्या लौटने पर शीघ्र ही उनका राज्याभिषेक हो गया था। अतः लंका से विमान द्वारा अयोध्या पहुँचने में अधिक से अधिक एक अथवा दो माह का समय लगा होगा। उत्तररामचरित में हम पाते हैं कि राम के राज्याभिषेक के बाद से ही नाटक का प्रारम्भ हुआ है और कवि ने उस समय सीता को आसन्न प्रसवा चित्रित किया है।<sup>1</sup> यह करुण रस की चरमसीमा वर्णित करने के लिए तो आवश्यक है किन्तु सीता के विषय में उस जनापवाद को पुष्ट करता है जो लोगों द्वारा फैलाया गया था।<sup>2</sup> क्योंकि इसका तात्पर्य है कि लंका से अयोध्या पहुँचने के अन्तराल में ही सीता गभावस्था के समय को पूर्ण कर चुकी थीं। इस प्रकार राम के राज्याभिषेक के समय सीता को पूर्ण गभवती चित्रित करके कवि ने प्रथम अंक

1. नटः- "कठोरगर्भापि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।"

उत्तररामचरित, 1.पृ 21

2. "रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चय।"

वही, 1.6

को दोष युक्त कर दिया है। लेकिन वाल्मीकि रामायण इस दोष से मुक्त है, इसके अनुसार राज्याभिषेक के बाद राम-सीता ने आनन्दपूर्वक अनेक वर्षों तक राज्य किया।<sup>1</sup>

इस नाटक की कथावस्तु संरचना में कुछ दोष हैं लेकिन भवभूति इस नाटक में पहले दो नाटकों की अपेक्षा अभिनय की सफलता प्राप्त करने में अधिक सफल हुये हैं।

भवभूति के रूपकों का नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से मूल्यांकन करने से यह ज्ञात होता है कि भवभूति ने नाटकीय नियमों का काफी सीमा तक पालन किया है। उनके रूपकों में अधोपक्षेपकों का भी उचित निवाह हुआ है। पहले दो रूपकों में इनका मुक्त प्रयोग हुआ है, उत्तररामचरित में भी पूरी तरह छोड़ नहीं दिये गये हैं, किन्तु वे सीमित हैं तथा जहाँ कहीं भी प्रयुक्त हुये हैं वहाँ केवल कथा के विकास को कड़ो जोड़ने के बजाय, वे ज्यादा अच्छे नाटकीय उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। प्रवेशकों एवं विष्कम्भकों की सीमित लम्बाई, उनका अभिव्यञ्जनात्मक महत्त्व भवभूति की कलात्मक प्रकृति के सूचक हैं। भवभूति ने अपने रूपकों में अनेक अलौकिक तत्वों को भी स्थान दिया है लेकिन उनमें से अधिकतर को चूलिका अर्थात् नेपथ्य कथनों या विष्कम्भकों में रखकर रूपकों को अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह सुव्यक्त हो जाता है कि भवभूति कथानक संरचना के कुशल कलाकार हैं। उनके इस कार्य में कुछ शिथिलताएँ

---

1. "एवं रामो मुदा युक्तः सीतां सुरसुतोपमाम् ।  
रमयामास वैदेहीम्हृदयहृदि देववत् ॥  
तथा तयोर्विहरतोः सीताराघवयोश्चिरम् ।  
अत्यकामच्छुभः कालः शैशिरा भोगदः सदा ॥"  
वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, 42, 24-26

भी आ गयी हैं जिससे कथानक में कुछ दोषों एवं कृत्रिमता का समावेश हो गया है लेकिन रूपकों में वर्णनों की प्रधानता एवं घटनाओं के स्वाभाविक विकास, मनुष्य की भावनाओं को समझने का गम्भीर ज्ञान, विभिन्न रसों के निष्पादन में उनकी कुशलता इत्यादि विशेषताओं के समक्ष ये दोष बहुत कुछ परिमार्जित हो जाते हैं और जिनके आधार पर भवभूति संस्कृत नाट्य-साहित्य में एक उच्च स्थान प्राप्त करते हैं।



सन्दर्भ - ग्रन्थसूची  
=====

**सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची**  
=====

**मूलग्रन्थ**  
=====

- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, भाग-3, वाराणसी, 1963
- कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सं. डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, आगरा,  
संस्क. 3, 1982
- कालिदास, रघुवंशमहाकाव्यम्, सं. डा० श्री कृष्णमणि त्रिपाठी,  
वाराणसी, संस्क. 4, 1990
- धनञ्जय, दशरूपक, संस्क. 2, 1962
- भवभूति, उत्तररामचरितम्, सं. ब्रह्मानन्द शुक्ल, मेरठ, संस्क. 6,  
1984
- भवभूति, महावीरचरितम्, वाराणसी, संस्क. 2, 1971
- भवभूति, मालतीमाधवम्, वाराणसी, संस्क. 2, 1968
- भरतमुनि, नाट्यशास्त्रम्, सं. प. बटुकनाथ शर्मा एवं प. बलदेव उपाध्याय,  
बनारस, 1929
- वाल्मीकि, रामायणम् भाग-1, सं. अमरेन्द्र लक्ष्मण गाडविल, पूना, 1982
- वाल्मीकि, रामायणम्, सं. परमहंस जगदीश्वरानन्द सरस्वती, दिल्ली,  
संस्क. 2, 1977
- विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, दिल्ली, संस्क. 9, 1977
- वेदव्यास, पद्मपुराण, सं. विश्वनाथ नारायण मण्डलीक, पूना, 1899
- रामचन्द्र गुणचन्द्र, हिन्दी नाट्य दर्पण, सं. नगेन्द्र, दिल्ली, संस्क. 1,  
1961

शारदातनय, भावप्रकाशन, सं. यदुगिरि यतिराज एवं के. एस. रामास्वामी,  
बड़ौदा, 1930

सागरनन्दी, नाटकलक्षणरत्नकोश, वाराणसी, संस्क. 1, 1972

सोमदेव, कथासरित्सागर, सं. जगदीशलाल शास्त्री, वाराणसी,  
संस्क. 1, 1970

#### सहायक ग्रन्थ

=====

नगेन्द्र , भारतीय नाट्य साहित्य, सं. महेन्द्र चतुर्वेदी, नई दिल्ली, 1976

A. C. Bradley, Shakespearian Tragedy, 1950.

Biswanath Bhattacharya, Sanskrit Drama and Dramaturgy,  
Varanasi, Ed.I, 1974.

Keith, The Sanskrit Drama, Calcutta, 1978.

Usha Satyavrat, Sanskrit Drama of Twenty Century, Vol.I,  
Delhi, 1971.

V. V. Mirashi, Bhavabhuti, Delhi, (Ed.I, 1974.